अनुक्रमणिका

क्रम स.	विषय	प्र.स.
१	शरणागति ही भागवत धर्म (व्यासाचार्या साध्वी मुरलिका जी)	३
२	श्रीमद्भागवत माहात्म्य-कथा (संत श्री ध्रुवदासजी महाराज)	५
३	श्रीमद्भगवद्गीता (साध्वी चंद्रमुखीजी)	७
४	अन्तर्मुखता में ही अध्यात्मरस (व्यासाचार्या साध्वी श्रीजी)	९
५	नामाभास मात्र से कल्याण (साध्वी गौरीजी)	१२
६	श्याम-प्रेयसी मीराजी की सत्संग-निष्ठा (संत श्री बरसानाशरणजी)	१४
७	महाराष्ट्र की मीरा सक्खूबाई (साध्वी मुकुन्दप्रियाजी)	१७
८	अमंगलहारी परमदेव 'गौमाता' (साध्वी माधुरीजी)	२२
९	सर्वात्मसमर्पण से ही श्रीकृष्ण प्रेम सम्भव (साध्वी सुगीताजी)	२४
१०	धामाराधकों की निष्ठा (साध्वी पद्माक्षीजी)	२८
११	मोहनमोहिनी से मोहित मनमोहन (साध्वी ब्रजबाला जी)	२९
१२	DHAAM-NISHTHAA (ravi monga ji)	३२

मूल्य – दस रुपये (१०/-)

संरक्षक – श्री राधा मान बिहारी लाल

प्रकाशक – राधाकान्त शास्त्री,

मान मंदिर सेवा संस्थान

गह्वर वन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.)

Website : www.maanmandir.org

E-mail : ms@maanmandir.org

Tel. : 9927338666, 9837679558

|| श्रीराधामानविहारिणे नम : ||

|| राधे किशोरी दया करो ||

हमसे दीन न कोई जग में, बान दया की तनक ढरो |

सदा ढरी दीनन पै श्यामा, यह विश्वास जो मनहि खरो |

विषम विषय विष ज्वाल माल में, विविध ताप तापनि जु जरो |

दीनन हित अवतरी जगत में, दीनपालिनी हिय विचरो |

दास तुम्हारो आस और की, हरो विमुख गति को झगरो |

कबहूँ तो करुणा करोगी श्यामा, यही आस ते द्वार पर्यो |

" अगर सच्चा दैन्य है तो निश्चित रूप से तुम प्रभु की दया के पात्र बन जाओगे | दैन्य से प्रभु की कृपाशक्ति मिलती है और फिर मनुष्य माया को जीत लेता है | छोटे बन जाओ, माया से पार हो जाओगे | " - पूज्य श्री बाबा महाराज

श्रीमानमंदिर की वेबसाइट www.maanmandir.org के द्वारा आप बाबाश्री के प्रातःकालीन सत्संग का ८:३० से ९:३० बजे तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६:०० से ७:३० बजे तक प्रतिदिन लाइव प्रसारण देख सकते हैं ।

प्रकाशकीय

अनादिकाल से विविध वासनाओं के कारण जन्म-मरण की यातनाएँ भोगते हुए प्राणी के लिए एकमात्र आश्रय सत्पुरुष ही दे सकते हैं । उनका सत्संग, उनका आश्रय मिल जाए तो वह सदा-सदा के लिए सुखी हो जाता है । सत्संग के अभाव में निश्चय ही जीव का विनाश हो जाता है । सत्संग अर्थात् सत्यस्वरूप संत का संग; उनके पास जाकर कुछ मत करो, केवल जाकर बैठ जाओ, तुम्हारे अन्दर सहज सात्विकता आने लगेगी । भगवत्भाव से भावित महापुरुष के दर्शन मात्र से वृत्ति सात्विकी हो जाती है । एक वाहन चालक के पास बैठा व्यक्ति यदि सो रहा है तो वाहक उसे सोने को मना करता है अथवा उसे वहाँ से हटा देता है क्योंकि उसकी निद्रा का प्रभाव उस पर भी पड़ने लगता है । इसी प्रकार जैसी वृत्ति के प्राणी का आप संग करेंगे, आपकी वृत्ति भी वैसी ही हो जाएगी । भक्तों की प्रत्येक क्रिया आराधना हो जाती है । ब्रजदेवियाँ व्यवहार के कार्य करते हुए भी कृष्ण गुणगान करती हैं ।

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप- प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ॥

(भागवत १०/४४/१५)

भक्त सब कुछ सह सकता है परन्तु अपनी आराधना का विक्षेप नहीं सह सकता । मीरा जी को सम्पूर्ण राज सत्ता ने उनको भगवत्प्रेम से अलग करने के हर संभव प्रयत्न किये परन्तु मीरा जरा-सी भी विचलित नहीं हुईं । उन्होंने समस्त सुखों का परित्याग कर दिया । अधिक बाधित होने पर चित्तौड़ छोड़ दिया । भगवद्भक्ति ही परम धर्म है । परम धर्म छूटा तो क्या रहा ? इसी कारण मीरा जी ने उस समय तुलसीदासजी को एक पत्र लिखा था जिसमें विष देना या सर्प पिटारा भेजना अथवा तरह-तरह की यातनाएँ देने की चर्चा नहीं किया बल्कि लिखा था कि साधु-संग और भगवद्भक्ति में समस्त परिवारी जन बाधक हो रहे हैं । तुलसीदासजी ने भी उत्तर लिखा कि जिसको भगवान् प्रिय नहीं है, उस सम्बन्धी को तुरंत शत्रुवत् छोड़ देना चाहिए । लौकिक धर्म साध्यकारी हों तभी स्वीकार्य है ।

जाके प्रिय न राम वैदेही ।
तजिये ताहि कोटि वैरी सम यद्यपि परम सनेही ।।
तज्यो पिता प्रह्लाद विभीषण बंधु भरत महतारी ।
बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज वनितन्हि भये मुद मंगलकारी ।।

प्रह्लाद जी के पिता हिरण्यकशिपु ने भक्ति में अवरोध प्रस्तुत किया, यही नहीं प्रह्लाद को मारने के सारे प्रयत्न किये । त्रैलोक्य की सबसे बड़ी शक्ति हिरण्यकशिपु ने सारी शक्ति लगा ली उस पांच वर्ष के बालक को झुकाने में परन्तु वह ऐसा कर नहीं सका । हिरण्यकशिपु के भय से त्रिलोकी कांपती थी । प्रह्लादजी को श्री नारद जी का संग मिला तो न केवल भगवत्प्राप्ति हुई अपितु उन्हें अजेय बना दिया । लोक-परलोक सर्वत्र मंगल हुआ । मानमंदिर की मासिक पत्रिका का उद्देश्य ही यही है कि महापुरुषों की वाणी जन-जन तक पहुँचती रहे और सभी निर्भय होकर अतीतानंद में निमग्न रहें ।

राधाकांत शास्त्री, मानमंदिर ,बरसाना

शरणागति ही भागवत-धर्म

व्यासाचार्या साध्वी मुरलिकाजी (मानमन्दिरवासिनी,गह्वरवन, बरसाना)

द्वारा कथित 'श्रीमद्भागवत-कथा' (९/१/२०१४)

श्रीमद्भागवतजी में प्रथम श्लोक शरणागति धर्म का है। जैसे - श्रीमद्भगवद्गीताजी का जो सार है वह भी **'मामेकं शरणम व्रज'** शरणागति ही है, वैसे ही भागवतजी का आरम्भ भी शरणागति से ही होता है। भगवान् को प्रणाम किया गया। एक बात हमलोगों को समझ लेनी चाहिए कि श्रीमद्भागवत ब्रह्म यज्ञ है और इस ब्रह्म यज्ञ में ब्रह्म के दो स्वरूप हैं, उन दोनों ही स्वरूपों का वर्णन हुआ है। एक तो ब्रह्म का स्वरूप है कि ठाकुरजी आये कृष्ण रूप में, उन्होंने अवतार ग्रहण किया। दूसरा उन प्रभु का भी जो रसमय रूप है। रसरूप क्या है ? उपनिषद में कहा गया –

'रसो वै सः रसँ ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति'

जो आनंद प्रदान करने वाला है, जो रस में डुबो देने वाला है, जिसकी उपलब्धि से रस-प्राप्ति होती है, आनंद मिलता है, ब्रह्म का वह स्वरूप कैसा है ? इसका उत्तर है कि ब्रह्म का बाह्यरूप तो कृष्ण रूप है लेकिन जो आंतरिक रूप **श्रीराधारानी** हैं। आंतरिक रूप 'रसरूप' है, ऊपर से नीचे तक रसमय है।

श्रीमद्भागवतजी को 'पुराण-तिलक' कहा गया है –

'श्रीमद्भागवतम पुराण तिलकं
यद् वैष्णवानां धनम्।'

पुराणतिलक है 'श्रीमद्भागवत' अर्थात् पुराणों में सबसे श्रेष्ठ है, साथ ही वैष्णवों का परम धन भी यही है, रसिक महापुरुषों का सबसे बड़ा धन भी यही है, क्योंकि इसमें रस का वर्णन किया गया है। रस का निरूपण हुआ है, तो वह रस कहाँ से आया ? श्रीराधारानी से वह रस प्रकट हुआ। राधारानी ही रस की अधिष्ठात्री शक्ति हैं, वे ही आह्लादिनी शक्ति हैं अतः जब तक भागवत में युगल तत्व का वर्णन नहीं होगा तब तक भागवत का रसरूप दिखाई नहीं देगा। शुकदेवजी महाराज ने भागवत कथन किया, वैष्णवों का धन बनी भागवत, पुराणों में तिलकस्वरूप हुई भागवत, क्यों ? क्योंकि भागवत में रासेश्वर और रासेश्वरी अर्थात् 'रसमय युगल तत्त्व' का वर्णन हुआ है ।

बहुधा लोग कह देते हैं कि जो भागवतजी का प्रतिपाद्य विषय है अर्थात् जिस मुख्य तत्त्व का भागवत में वर्णन हुआ है, वह केवल श्रीकृष्ण ही हैं किन्तु श्रीकृष्ण कौन से हैं ? तो कहा गया – **'राधयाः सहितः श्रीकृष्णः'** श्रीराधारानी के साथ जो श्रीकृष्ण हैं, उन युगलकिशोर श्रीराधामाधव का ही इसमें निरूपण हुआ है। उन प्रभु। भगवान् के स्वरूप का वर्णन किया गया है – को प्रणाम किया गया है, उनकी शरण ग्रहण की गई है

सच्चिदानंदरूपाय विश्वोत्पत्यादिहेतवे।
तापत्रयविनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुमः॥

(भागवत-माहात्म्य -१/१)

भगवान् सच्चिदानंद स्वरूप हैं। सच्चिदानंद का मतलब सत्य भी वे ही हैं, संसार में सत्य वस्तु यदि कोई है तो वह केवल भगवान् हैं। भगवान् सत्य हैं, सनातन हैं, जो वस्तु सनातन है, वही सत्य है और जो सत्य है वही सनातन है। श्रीमद्गीताजी में भगवान् ने कहा –

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।

(गीता २/१६)

जो सत्य वस्तु है, वह तीनों कालों में रहेगी। वह वस्तु कभी काल से बाधित नहीं हो सकती है। काल का उस पर प्रभाव नहीं पड़ सकता। विचार करके देखा जाए तो संसार की एक भी वस्तु या ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो काल से प्रभावित न हो। जो कालातीत हैं, जो काल से परे हैं, वह केवल भगवान् हैं। **'वयं नुमः'** हम सब उनको प्रणाम करते हैं, हम सब उनकी शरण में जाते हैं, क्यों ? क्योंकि सत्य वस्तु एकमात्र भगवान् ही हैं,

'जो तिहुँ काल एक रस रहहीं।'

तीनों कालों में जिनकी एक-सी सत्ता सर्वदा बनी रहती है यद्यपि जो भगवान् सद्-घन 'सत्यस्वरूप' हैं, उन्हीं के हम लोग अंश हैं किन्तु फिर भी जब तक शरणागति-धर्म सिद्ध नहीं होगा, हम लोग उनकी शरण नहीं लेंगे तब तक सद्-अंश होने के बाद भी हम लोगों का जन्म-मरण होता रहेगा। हमलोग काल से बाधित होते रहेंगे। यदि सत्यरूप भगवान् की शरण में चला जाया जाए तो निश्चित है कभी काल प्रभाव डाल ही नहीं पायेगा,

फिर जैसे उनकी तीनों काल में सदा सत्ता रहती है, वैसे ही सत्तावान यह जीव भी हो जाएगा, जब उनकी शरण में चला जाएगा । भगवान् चिद्-स्वरूप हैं, प्रकाश-स्वरूप हैं, उन भगवान् के प्रकाश से ही ये सम्पूर्ण सृष्टि प्रकाशित हो रही है । भगवान् की ही सत्ता से सारी सृष्टि प्रकाशित हो रही है ।

सब कर परम प्रकासक जोई ।
राम अनादि अवधपति सोई ।।

(रामचरितमानस, बालकाण्ड – ११७)

अतः हम सब जीव भगवान् के चिद् अंश हैं लेकिन जब तक चिद् घन भगवान् की हम लोग शरण ग्रहण नहीं करेंगे तब तक जड़ बने रहेंगे, माया से लिप्त रहेंगे, माया से निर्लिप्त नहीं हो पायेंगे । यह अविद्या माया बिल्कुल जड़ है । इस जड़ माया से छूटने के लिए भगवान् ने गीताजी में कहा है

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते

यदि इस जड़ माया से छूटना चाहते हो तो 'मामेव' एकमात्र मेरी शरण में सब लोग आ जाओ । अतः जड़ माया से मुक्त होना है, इसलिए हम सब भगवान् की शरण ग्रहण करते हैं। तीसरी बात कही गई कि प्रभु का विग्रह, उनका स्वरूप आनंदमय है । संसार के किसी भौतिक वस्तु पदार्थ में कहीं भी आनंद नहीं है। देखो - सुख और आनंद में बहुत बड़ा भेद है। सुख और दुःख वे द्वन्द हैं जो आगमापायी हैं, आते-जाते रहते हैं । किसी भी व्यक्ति का जीवन सदा एक-सा नहीं रहता है, थोड़े समय सुख रहेगा, फिर दुःख रहेगा फिर दुःख आएगा फिर सुख आएगा । इसलिए सुख और दुःख, ये दोनों द्वन्द आने-जाने वाले हैं लेकिन 'आनन्द' वह स्थिति है जो एक बार आ गई तो फिर कभी जाती नहीं है । अतएव संसार के किसी वस्तु-पदार्थ में आनंद हो ही नहीं सकता क्योंकि संसार की कोई भी वस्तु स्थिर रहने वाली है ही नहीं। जब वस्तु ही स्थिर नहीं है तो उसमें होने वाला आनंद कैसे स्थिर हो जाएगा । तो आनंद कहाँ है –

जो आनंद सिन्धु सुखरासी। सीकर तें त्रैलोक सुपासी ।।

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड – १९७)

आनंद का जो समुद्र है, वह केवल भगवान् हैं । उन आनंदसिन्धु भगवान् की यदि हम लोग शरण ग्रहण कर लें तो कष्ट, क्लेश, दुःख आदि सदा-सर्वदा के लिए चले जाएँगे अर्थात् समूलतः नष्ट हो जाएँगे ।

'सच्चिदानंदरूपाय विश्वोत्पत्यादिहेतवे ।
तापत्रयविनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुमः ।।'

में भगवान् की तीन शक्तियों का वर्णन हुआ है – **'सच्चिदानंदरूपाय'** इस प्रथम चरण में भगवान् की स्वरूपशक्ति का वर्णन हुआ है, फिर **'विश्वोत्पत्त्यादिहेतवे'** में ठाकुरजी की 'सामर्थ्यशक्ति' का वर्णन हुआ है । भगवान् ही इस संसार को बनाने वाले हैं, इस संसार का भरण-पोषण करने वाले हैं और यह अंत में उन्हीं में ही लीन हो जाता है । ये सामर्थ्य केवल भगवान् में ही है, भगवान् के अतिरिक्त और कहीं नहीं है । **'तापत्रय विनाशाय'** इसमें भगवान् की स्वभाव शक्ति का वर्णन किया गया है। प्रभु का स्वभाव है कि एक बार भी कोई जीव यदि उनकी शरण में आ जाए तो आध्यात्मिक, आदिदैविक और आदिभौतिक - इन तीनों प्रकार के तापों का उन्मूलन स्वतः हो जाता है । जब तक भगवान् की शरण नहीं ली जाएगी तब तक क्लेश हैं, कष्ट हैं और इनसे पीड़ित होना ही पड़ेगा । जब तक आदमी आग के पास नहीं जाएगा, ठण्ड दूर नहीं होगी, ये स्वाभाविक है और आग के निकट चला गया तो अपने आप सब ठण्ड गायब हो जायेगी । आदमी दुःख में है, क्लेशाक्रांत है, इसका मतलब कि वह भगवद्-शरणागत नहीं है, यदि वह भगवद्-शरणागत है तो तीनों कालों में आनंद ही आनंद प्राप्त करेगा । **'श्रीकृष्णाय वयं नुमः ।।'** भक्ति का जो मूल है, वह शरणागति धर्म ही है । यदि भगवान् के शरणागत हम लोग हो जायें तो **'तापत्रयविनाशाय'** सब प्रकार के तापों से हमलोग विमुक्त हो सकते हैं । इसलिए प्रथम श्लोक में श्रीठाकुरजी-श्रीजी को प्रणाम किया गया है ।

क्रमशः

"भगवद् कथामृत पान करने से भक्ति बढ़ती है, जब भक्ति बढ़ती है तो चित्त स्वच्छ हो जाता है और वैराग्य हो जाता है। संसार से, शरीर से, मन से, बुद्धि से, इन्द्रियों से, यहाँ तक कि प्राणों से भी राग हट जाता है, उसको सच्चा वैराग्य कहते हैं और वह खेल-खेल में भगवान् के चरणों के पास पहुँच जाता है । बिना मेहनत के ही अकुण्ठ पदवी को अर्थात् भगवद्धाम को चला जाता है।"

श्रीमद्भागवत माहात्म्य-कथा

श्रीबाबामहाराज द्वारा कथित 'श्रीमद्भागवत सप्ताह महायज्ञ' (२२/२/१९८५)
संकलनकर्ता / लेखक - संत ध्रुवदासजी महाराज ,मानमंदिर

श्रीमद्भागवतमहापुराण की जय, श्रीसप्ताहमहायज्ञ की जय, श्रीव्यासजी महाराज की जय, श्रीशुकदेवजी महाराज की जय, सब भगवद्भक्तों की जय, जय जय श्रीराधेश्याम ।

मंगलाचरण

वन्दे राधिकां देवीं किशोरी माधव स्वामिनीम् ।
श्यामां गजगामिनीं चैव त्रिभुवन मोहन मोहिनीम् ।।
वन्दे नवघनश्यामं पीत कौशैय वाससम् ।
सानन्दं सुन्दरं शुद्धं श्रीकृष्णं प्रकतेः परम् ।।

'श्रीमद्भागवतमहापुराण' जाके भीतर गूढ़ रूप से प्रियाजू (श्रीकिशोरीजू) को रस है और वाको स्पष्ट रूप से आचार्यन् ने रासपंचाध्यायी में खोलौ है, श्रीयुगलरस के कारण ही याकी ऐसी महिमा भई है, ये रस को समुद्र है, याको माहात्म्य प्रारम्भ कियो जाय है । नैमिषारण्य एक स्थान है, वहाँ बहुत बड़ो यज्ञ भयौ, जामें ऋषि-महर्षि आदि सभी लोग एक सहस्त्र वर्ष के लिए बैठे । वा स्थान पर सबसे पहले व्यासजी की और शुकदेवजी की वन्दना करवे के बाद ऐसो आख्यान लिखें कि शौनकजी ने प्रश्न कियो सूतजी सों कि हे महाराज ! ये बड़ो घोर (भीषण) कलियुग प्राप्त भयौ । **"जीवाश्चासुरतां गतः"** जितने भी प्राणी हैं सव असुर होय चुके हैं अर्थात् सबमें आसुरी भाव - केवल 'कलह, राग-द्वेष' यही सब है तो ऐसे में जीव को कल्याण कैसे होय सके, ये आप बताओ ?

सूतजी बोले कि देखो - कलियुग को भय तो है ही, परन्तु जीवन् कूँ सवसे बड़ौ भय काल को है । ये काल एक व्याल 'अजगर' है और ये हम लोगों के लिए घूम रह्यौ है, यासे बचवे के लिए केवल श्रीमद्भागवत महापुराण ही है और दूसरो कोई उपाय नहीं है । देखो, जब जीव को जन्म-जन्मान्तर को पुण्य होय **"जन्मान्तरे भवेत्पुण्यं तदा भागवतं लभेत्"** तब भागवतजी मिलें अन्यथा मिलें नाँय । कोई जीव श्रवण तबही कर सके, जब याके जन्मान्तर के पुण्य आ जावें और तुम याही से समझ लेओ कि जब कथा कहबे बैठे शुकदेवजी तो देवतागण कैसे चतुर हैं, वे अमृत को घड़ा (कलशा) संग ले आये और शुकदेवजी से बोले कि यदि आप परीक्षित को जीवन चाहो तो ये अमृत पिलाय दो और हमको श्रीमद्भागवत को अमृत दै दो | तो या प्रकार से वणिक बुद्धि (व्यापार बुद्धि) देखकरके शुकदेवजी ने उनकी हाँसी दै दियो कि देखो, कहाँ तो ये मणि **'श्रीमद्भागवतजी'** ! और कहाँ ये काँच को टुकड़ा अमृत !! अरे, अमृत को नाम 'अमृत' है लेकिन अमृत तो बड़ो जहर है क्योंकि विषबन्धु है, जहर से निकलो है, जहर वाको भैया है, अमृत पीके शरीर बड़ो पुष्ट होयगो और देवता बनके आदमी भोग भोगे, तो अमृत तो चाहें नहीं भक्त लोग, ये काँच है, केवल काँच घोटकर प्याय दो तो आदमी मर जाएगो । या लिये उन्होंने नहीं दियो और ये बतायो कि देखो, श्रीमद्भागवतजी के पठन से, श्रवण से सद्यः (अति शीघ्र) भगवान् श्यामसुन्दर श्रीयुगल (राधामाधव) की प्राप्ति होवे । सूतजी कह रहे हैं कि हे ऋषिजनों ! भागवत-कथा तो पूर्वकाल से ही होय रही है किन्तु सप्ताह-विधि नारदजी के लिए सनकादिक ने चलाई । या बात को सुनकरके शौनकजी चौंके और बोले – "नारदजी सात दिन तक कथा कैसे सुनें ? नारदजी को तो शाप है कि एक क्षण के लिए एक जगह बैठई न सकें और सात दिना तक कैसे वैठे रहे, ये तो हमारी समझ में बात नहीं आई महाराज !"

सूतजी बोले - "बात ये है - सुनो, एक बार सनकादिक चारों भैया सत्संग के लिए बैठे तो उधर से नारदजी बड़े उदास भाव से जा रहे तो चारों भैयान् ने पूछी कि नारदजी ! आप तो बड़े विरक्त हो और आपको मुख कैसो उदास लग रह्यो है । कोई गृहस्थ चिंता में होय तो होय - **कथं ब्रह्मन् दीन मुखः कुतश्चिन्तातुरो भवान्** । अरे ! आप तो ऐसे लग रहे हो जैसे कोई लुट गयो होय - **इदानीं शून्यचित्तोसि गतवित्तो यथा जनः** । आपको का डाका पड़यो है, कहा बात ह्वै गई है ।"

नारदजी बोले कि महर्षियों ! हम बड़े दुःखी हैं, बात सही है, एक बार हम पृथ्वी के तीर्थों - पुष्कर, प्रयाग,

काशी आदि सब जगह गये, किन्तु कहीं पर हमने शांति नहीं देखी । जितने तीर्थस्थान हैं, सब जगह घूम आये, तीर्थों में शांति बिल्कुल ही नहीं है |

वास्तविकता यही है, आजकल देखो तो सत्य नहीं है, तप नहीं है, शौच नहीं है । सब लोग केवल पेट पालवे के सिवाय और कछु नहीं जान रहे हैं, पशु की तरह हैं, हम क्यों मनुष्य बने, काहे के लिए आये थे और हमें कहा करनो है, प्रायः सब पशु बन गये हैं, घर-घर कलह है, न तो कोई योगी रह्यो, न कोई साधु रह्यो, न संत रह्यो, जो विरक्त बने हैं, वे हू अर्थ को संचय करें हैं । सब जगह धन की बहुलता देख लो और कहाँ तक कहें, नारद जी कह रहे हैं कि कलियुग की एक भीषण अग्नि जल रही है, जा अग्नि ने जितने साधन थे, सबकूँ जलाय के खाक कर दियौ, एकदम सब चीजें खाक बन गईं, मैं दुःखी होते-होते पहुँचौ यमुनाजी के किनारे ब्रज में, जहाँ पर कन्हैयाजी की लीलाएँ भईं , वहाँ मैंने देखौ कि एक बड़ी सुंदरी युवती उदास मुख से बैठी है, वाई के पास में दो बूढ़े-बूढ़े निर्जीव से पड़े हैं वहां पर और वह युवती कभी वा डोकरा की सेवा कर रही है, कभी या डोकरा को संभाल रही है, साधारण स्त्री नहीं है क्योंकि वाके सैकड़ों स्त्रियाँ पंखा हल रहीं हैं, बड़ी-बड़ी दिव्य देवियाँ सेवा कर रहीं हैं तो जब मैं वहाँ पहुँचो तो वो बाला (सुंदरी) बोली हमें देखकरके – “अरे ! अरे साधो !! रुको भैया, देखो - साधुओं के दर्शन सों ही पाप नष्ट हो जायें, साधु वा ते कहें और

“यदा भाग्यं भवेद्भूरि भवतो दर्शनं तदा ।”

बड़े भारी पुण्यन् के बाद साधु को दर्शन होय, भक्त को दर्शन होय ।” नारदजी वहाँ खड़े हो गये और प्रश्न कियो कि हे देवी ! ये अनेक देवियाँ आपकी सेवा कर रही हैं, आप कौन हो और ये दोनों बूढ़े कौन हैं ? वो देवी बोली – **अहं भक्तिरिति ख्याता’** ‘नारदजी ! मैं साक्षात् भक्ति हूँ, मेरो नाम भक्ति है, ये दोनों मेरी संतानें ज्ञान और वैराग्य हैं और ये गंगा, नर्मदा, कावेरी आदि सब नदियाँ हमको आयके पंखा हिला रहीं हैं, हमारी सेवा कर रहीं हैं |’ भक्ति महारानी सर्वोच्च देवी हैं और वह बोलीं – “देखो, मैं पहले द्रविड़ में उत्पन्न भयी, कर्नाटक में बढ़ी, गुजरात में जीर्णता (वृद्धता) को प्राप्त भई क्योंकि वहाँ शुद्धि-अशुद्धि को उतनो विचार नहीं रहै । घूमते-घूमते जब मैं वृद्ध हो गई तो वृन्दावन धाम में आयी, वृन्दावन धाम में आते ही नारद जी ! मैं बिना साधन के ही नवीन बन गई और ये हमारे जो दोनों बालक हैं, मैं इनकी माँ हूँ, मैया तो जवान है और बच्चे बूढ़े है गये, चल नहीं पावें, ये कैसे भयो ?” नारदजी सुनके बोले कि अच्छा देवी, मैं विचार करहूँ, भगवान् कल्याण करेंगे, आप भरोसा रखो । नारदजी ने विचार करके कहा कि हे देवी ! देखो - बात यह है कि बड़ो भीषण (दारुण) कलियुग आ गयो है, वा युग के प्रभाव से सदाचार, तपस्या, योग सब खत्म ह्वै गए हैं “जना

अघासुरायन्ते” हर प्राणी अघासुर जैसो बन गयो, वे नैक में ही सर्प की तरह लड़बे को, फुंकारने को तैयार हो जाएँ, काऊ में सहनशीलता नहीं है, बाप है, बेटा है, सब अघासुर बन गए हैं और शठता व दुष्कर्म कर रहे हैं, जो कोई सन्मार्ग पर चलैगो, साधु बनैगो तो वाको यहाँ कष्ट मिलैगो **"इह सन्तो विषीदन्ति"** और असाधु लोग प्रसन्न होंये । ऐसे में जो पापी होय वो प्रसन्न होये और धर्मात्मा दुःख भोगे तो बड़े-बड़ेन की श्रद्धा नष्ट हो जाए कि भाई, ये का है । ऐसे में जो श्रद्धा रखे वही पंडित है, वही धीर है और देखो - इस वृन्दावन में जब तुम आय करके युवती भई हो (ये धाम की ही महिमा है जहाँ भक्ति नवनवायमान होकर नृत्य करने लगती है) । तो ये ब्रजभूमि बड़ी धन्य है, यहाँ पर तो स्वभाव रूप से भक्ति जगह-जगह नृत्य करै, लोग बातचीत करैं तो राधे-राधे बोलें, कोई हाँसी करैगो तऊ राधे-राधे बोलैगो, लोग चलते-फिरते भगवन्नाम बोलैं, जैसे - काउ को नाम कृष्ण है, श्याम है, माधव है, वासुदेव है तो उन नामों से बुलाते हैं । भक्ति महारानी बोलीं – “हे नारदजी महाराज ! ये कलियुग जो इतनो भयानक है, अधर्म को प्रचार कर रह्यो है तो याको भगवान् क्यों देख रहे हैं ?” नारद जी बोले – “हे देवी ! देखो, भगवान् मुकुंद जब यहाँ से गये धाम को तो वाई दिन कलियुग आयो किन्तु देवी ! एक बात है कि कलियुग की बुराई बहुत है, कलियुग में सिवाय अनर्थ के कछु नहीं है किन्तु एक गुण यामें ऐसो है कि या एक गुण के आगे अधर्म वारो होतो भयो भी सब युगन से आगे बढ़ गयो है, ये आश्चर्य की बात है ।” भक्ति देवी बोलीं - “सबरे अधर्म के, सब पापन को जड़ ये कलियुग है और फिर भी सबन से आगे बढ़ गयौ, ये बात तो समझ में नहीं आयी ।” नारदजी बोले – “हाँ, यही बात तो समझने की है, ये बात जो समझ गयो फिर वो हाथ मार जायगो (उसकी

विजय होगी)।" भक्ति ने पूछो- यामे कहा रहस्य है ? नारदजी बोले – "देखो, ये कलियुग घोर पापमय है क्योंकि यहाँ पर कोई तपस्या, योग, समाधि आदि कोई साधन नहीं है किन्तु ये तुम निश्चय समझो –

यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना ।
तत्फलं लभते सम्यक् कलौ केशवकीर्तनात् ।।

जो पहले सतयुग, त्रेता, द्वापर आदि युगन में लोग तपस्या करते थे, योग करते थे और समाधि लाखों-लाखों वर्ष लगाते थे, उससे जो फल मिलता था, उससे

बढ़कर फल इस कलियुग में केवल कृष्ण-कीर्तन से मिल जाए है; या गुण के कारण कलियुग सबन् ते ऊपर चलो गयो । ऐसी महिमा कीर्तन की है, हम लोग कीर्तन करते नहीं हैं, इतनो सरल साधन है किन्तु हम लोग वासे विमुख हैं तो या कारन से ये कलियुग हमें खाय जा रह्यो है । यदि हमलोग या साधन को करें निष्ठा से तो कलियुग की शक्ति क्षीण हो जावेगी, लोक-परलोक सब प्रकार से आनंद हो जाय ।

सब लोग मिलकर बोलो –

जय जय राधे गोविन्दा, जय जय राधे गोविन्दा ।
जय जय वृन्दा चंदा, जय जय राधे गोविंदा ।।

या प्रकार से निष्ठा से जो लोग कीर्तन करे हैं अपने घर में बैठके तो वे कलियुग में रहते भये भी सब साधन तपस्या, योग आदि से ऊपर चले जायें, ये बात डंके की चोट पे कही जा रही है और कथा को फल यही है - सब लोग समझते जाओ, ऐसी गांठ बांधो कि नित्य कीर्तन करो, ये बात मैं नहीं कह रह्यो हूँ, शास्त्र कह रह्यो है । आगे नारदजी बोले कि कलियुग में सबसे अधिक दोष हैं - पंडित लोग केवल विषय-भोग में लिप्त हैं, मुक्ति को साधन जानें नहीं और तीर्थन् में जो लोग जाय हैं तो तीर्थ में जायवे से कछु नहीं होय रह्यो है,क्योंकि

"अत्युग्र भूरिकर्माणो नास्तिका रौरवा जनाः"

तीर्थ में जब जाओगे तो तीर्थ में उग्र कर्म करने वाले जो नास्तिक रहैं तो उनके तामस तेज के आगे तीर्थ भी अपनो तेज छुपा लेवें ।

"तेऽपि तिष्ठन्ति तीर्थेषु तीर्थसारस्ततो गतः"

या लिये जितनी भी भूमियाँ हैं, वामें पापी लोग रहें तो भूमियाँ अपने प्रभाव को छुपा लें, ये बात बिलकुल सत्य है, अतः वहां जायवे से कल्याण नहीं हो रह्यो । इसीलिए महापुरुषन् ने तीर्थों का खंडन कियो कि डोलते रहो क्योंकि वास्तविकता वहाँ पर है ही नहीं । एकमात्र वही उपाय है जो हमने बतायो कि कहीं मत डोलो और केवल कृष्ण-कीर्तन करो । सूत जी बोले कि या बात को सुनकर के फिर से भक्ति महारानी ने कहा कि हे सुरर्षे ! तुम बड़े धन्य हो, तुम्हारे दर्शन से अवश्य हमारो कार्य होगो क्योंकि तुम वही नारद हो जिनकी कृपा से प्रह्लाद ने भगवत्प्राप्ति की और तुम्हारी ही कृपा से ध्रुव को भी भगवत्प्राप्ति हुयी थी, छोटे-छोटे बच्चों को इतने ऊँचें स्थान पर पहुँचावे वाले तुम्हीं हो, इसलिए हमारो भी कार्य सिद्ध होवेगो ।

क्रमशः

श्रीमद्भगवद्गीता

श्रीबाबामहाराज के सत्संग
(१२/१/२०१२) से संग्रहीत
संकलनकर्त्री / लेखिका- साध्वी चंद्रमुखीजी, मानमंदिर ,बरसाना

अर्जुन की गुरुजनों में भक्ति

अर्जुन उवाच

कथं भीष्ममहं सङ्ख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।इषुभिः
प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥ ४ ॥

अर्जुन ने अपनी समस्या रखी –

कथं – कैसे, अहम् – हम, भीष्मम् – भीष्म को, सङ्ख्ये– युद्ध में, **द्रोणं च** - और द्रोणाचार्य हमारे गुरु को, हे मधुसूदन ! कैसे, 'इषुभिः' बाणों से 'प्रतियोत्स्यामः' युद्ध का उत्तर देगें (युद्ध करेगें),योत्स्यामि - युद्ध करना, प्रतियोत्स्यामि - युद्ध के बदले में युद्ध करना । 'अगर वे

हमला करते हैं तो भी हम कैसे हमला कर सकते हैं ? क्योंकि 'पूजार्हौ' दोनों पूजा के योग्य हैं 'अरिसूदन' शत्रुओं को नष्ट करने वाले हे कृष्ण !'

इसमें अर्जुन ने गुरु भक्ति और पितृ भक्ति दिखाई है - 'द्रोणाचार्य' शब्द कहने से गुरु भक्ति और 'भीष्मम्' से पितृश्वरों की भक्ति । भीष्म इनके दादा थे और भीष्म की गोद में ये सब बच्चे खेले हुए थे । भीष्मपितामह का इतिहास हम लोगों को समझना चाहिए । भीष्मपितामह शान्तनु के पुत्र हैं, शान्तनु भीष्म के पिता हैं, गंगा इनकी माँ है, गंगा से पैदा हुए हैं । गंगा शान्तनु की पत्नी थी । एक बार गंगा माँ ब्रह्मलोक में थीं । जितनी नदियाँ आदि हैं, ये सब मूर्तिमान ब्रह्मलोक में रहती हैं देवी रूप से । तो होनहार की बात थी - गंगा जी उठ के चलीं, दिव्य सुन्दरता है और इनका आँचल उड़ा तो आँचल उड़ने से आँचल के नीचे जो चोली थी वो दिखाई पड़ी । उस समय शान्तनुजी भी ब्रह्मलोक में थे और उनकी दृष्टि गंगाजी के वक्षःस्थल पर गयी; इस बात पर ब्रह्मलोक में ब्रह्माजी नाराज हुए और उन्होंने कहा- "ये ब्रह्मलोक की मर्यादा तोड़ दिया तुमने । स्त्री को देखना नहीं चाहिए, यह ब्रह्मलोक है । तुम दोनों को शाप है ।" गंगा को शाप दिया कि तुम जाओ मानवी बनो, मनुष्य बनो । वहां शान्तनु का नाम महाभिषक था अतः महाभिषक नामक शान्तनु को श्रापित किया कि तुम जाओ पृथ्वी पर, वहां तुम गंगा के पति बनोगे क्योंकि ब्रह्मलोक में तुमने इनका दृष्टि से वरण किया, देखा । दृष्टि से देखना भी गलत है, इसलिए तुमको भी मनुष्य बनना पड़ेगा और ये तुम्हारी स्त्री बनेगी । कुछ समय बाद फिर तुम दोनों ब्रह्मलोक में आ जाओगे ।
इस प्रकार गंगा जी वहाँ से भूतल पर आयीं, इनको मानव योनि (गंगा की योनि) मिली, मनुष्य शरीर धारण करके गंगा बनीं ।

महाभिषकजी राजा शान्तनु बने, ये जिसको छू देते थे तो बूढ़ा जवान हो जाता था, महाभिषकजी इतने प्रतापी थे । इन्होंने गंगाजी को वरण किया, लेकिन गंगाजी ने कहा –"एक शर्त है मेरी, मैं गलत करूँ चाहे सही करूँ, तुम टोकना नहीं, जिस दिन तुम टोक दोगे, मैं तुमको छोड़ दूँगी ।" उन्होंने बात मान लिया । गंगाजी ने शर्त इसलिए लगाई कि आठ वसु थे (ये देवता हैं एक तरह के) । इन्होंने एक बार वशिष्ठ जी के आश्रम से कामधेनु गाय की चोरी की थी । तो चोरी करने के कारण इनको शाप दिया ऋषि ने कि जाओ तुम सब मनुष्य बनो । आठों वसु वशिष्ठ मुनि के चरणों में गिरे और क्षमा माँगी । तो उन्होंने कहा – "ठीक है, थोड़े समय के लिए तुमको मनुष्य बनना पड़ेगा । गंगाजी तुम्हारी माँ बनेगीं और मैं ऐसा प्रबन्ध कर दूँगा ।" वशिष्ठजी ने गंगा जी को बुलाया और उनसे कहा कि तुम शान्तनु की स्त्री बनोगी तो ये आठों वसु तुम्हारे बच्चे बनेंगे और पैदा होते ही इनको तुम समाप्त कर देना, गंगा जल में डुबो देना तो तुरन्त इनकी मनुष्य योनि खत्म हो जाएगी ।"

इस प्रकार एक–एक करके सात बच्चे गंगा से पैदा हुए । पहला बच्चा पैदा हुआ तो गंगा उस बच्चे को लेके चली । अब शर्तानुसार शांतनुजी देखते रहे और टोक नहीं पाये कि कहाँ ले जा रही है बच्चे को ? गंगाजी ले गयीं और गंगाजल में डुबो दिया, खत्म हो गया तो उसकी मनुष्य की योनि खत्म हो गयी, देवता बन गया तुरन्त ।
दूसरा बच्चा भी पैदा हुआ, ऐसा ही हुआ, उसको भी ले गयीं डुबो दिया अपने जल में , उसकी भी शाप की योनि खत्म हुई और वह भी तुरन्त देवता बन गया । इस प्रकार सात बच्चे गंगा जी ने मार डाले । आठवाँ बच्चा जब पैदा हुआ तो गंगा जी ले चलीं तब शान्तनु ने टोक दिया- अरे, तू कौन है ? मानव रूप में भक्षिणी बच्चों को ही मारती है, एक तो बच्चा छोड़ दे कम से कम । तो गंगा जी ने कहा – "अब मेरा वादा था, अब मैं जा रही हूँ, मेरा भी शाप का समय पूरा हो गया । मुझे थोड़ी-सी भूल पर मनुष्य योनि मिली थी । तुम जब मुझे देख रहे थे तो उस समय मैं अपने को सम्भाल नहीं पायी ।" स्त्री को कोई देख रहा है तो अपना अंग ढक लेना चाहिए , वक्षःस्थल देख रहा है तो दिखाना नहीं चाहिए , लज्जा करना चाहिए । इसलिए गलती इनकी भी थी । गलती महाभिषक शान्तनु की भी थी । किसी भी स्त्री को देखना नहीं चाहिए । बस इतनी सी भूल थी दोनों की और दोनों को मनुष्य लोक पर आना पड़ा ऊपर के लोकों से । इस कथा से शिक्षा मिलती है कि अगर कोई पुरुष स्त्री को देखता है तो वह दोष है और उसका उसको दण्ड मिलता है । कोई स्त्री किसी पुरुष को देखती है या उससे लज्जा करके अपने अंगों को नहीं बचाती है तो दण्ड की भागिनी है, उसको दोष भोगना पड़ता है और अपना अंग दिखाना वैश्या वृत्ति है ।

आजकल जैसे स्त्रियाँ श्रृंगार करके अपने रूप को दिखाती हैं, वह गलत है, वह शील गुण के विपरीत है, इससे उनका शील नष्ट हो जाता है जो लज्जा संकोच नहीं करती हैं। ये शिक्षा हर लड़की को लेनी चाहिए, नहीं लेने से उसका तेज नष्ट हो जाता है, उसका शील नष्ट हो जाता है और उसका उसको दोष लगता है। छोटेपन से माँ–बाप को भी चाहिए अपने बच्चों को यही सिखावें। लज्जा, संकोच ये सब बातें बिना सीखे सहज में मनुष्य को पाप लगता है। तो गंगा जी का भी शाप हट गया, जब शांतनु ने आठवें पुत्र के बारे में उन्हें टोक दिया। इसके बाद गंगा जी भीष्म को छोड़ के चली गयीं। भीष्म उस समय बच्चे थे और जाते समय गंगा जी उस बच्चे को भी ले गयीं क्योंकि बाप थोड़े ही पालन करता है, माता ही दूध पिलाती है, पालन करती है। इसलिए शास्त्रों में लिखा है- पिता से सौ गुना पूज्य माता होती है (मनु ने कहा है), क्योंकि वही जीवन देती है, पालन करती है, धारण करती है। इस प्रकार जब गंगा जी जाने लग गयीं तो भीष्म के बारे में शान्तनु ने कहा –"इस बच्चे को कौन पालेगा ?" तो गंगाजी बोलीं – "मैं पालन करूँगी, मैं बच्चे की माँ हूँ और जब यह योग्य हो जाएगा तब तुमको दे जाऊँगी, बच्चा तुम्हारा है।" तो वह उस बच्चे को ले गयीं और ले जाकर के उन्होंने उसका पालन किया। शस्त्र विद्या परशुराम से सिखवाया, वह सबसे बड़े धनुर्वेद के ज्ञाता थे उस जमाने में। परशुराम ने भीष्म को धनुर्वेद सिखाकरके एक इतना बड़ा योद्धा बना दिया कि संसार में उनके बराबर योद्धा कोई नहीं था। इधर महाराज शान्तनु गंगा के किनारे नित्यप्रति आते थे और अपना विरह शान्त कर लेते थे गंगा के दर्शन से। एक दिन की बात है कि शान्तनुजी ने देखा कि एक बालक ऐसे बाणों को चला रहा है कि पानी का वेग रुक गया जैसे कोई बांध बाँध देता है। तो उन्होंने कहा – "ऐसा कौन है ?" देखा, तो एक लड़का था। बचपन का इनका नाम था देवव्रत। भीष्म नाम तो पीछे पड़ा है प्रतिज्ञा करने के कारण। तो उन्होंने जाकर के पूछा –"तुम बेटा किसके पुत्र हो ?" वह बालक बोला –"शान्तनु मेरे पिता और गंगा मेरी माँ।" अरे ! तुम तो मेरे ही पुत्र हो। इतने में वहां गंगा आ गयीं, गंगा ने अपना पुत्र उनको दे दिया और कहा कि बेटा देवव्रत ! ये तुम्हारे पिता हैं। मैंने तुझे पाला, पोसा और अब तुझे इनको सौंपती हूँ, अब इनकी जिम्मेदारी है, ऐसा कहके गंगा जी चली गयीं और फिर देवव्रत अपने पिता शान्तनु के साथ रहने लग गए। इन्होंने अकेले ही संसार जीत लिया था, इतने प्रतापी थे, दिग्विजय किया। तो आठवाँ जो वसु था, गंगा जी ने जिसको मारा नहीं था वही भीष्म बने। सात वसुओं का उन्होंने उद्धार कर दिया था, आठवाँ नहीं मारा क्योंकि शान्तनु ने प्रार्थना किया कि एक बच्चा तो छोड़ दे तो पति के ऊपर दया करके उन्होंने छोड़ दिया, वही आठवाँ वसु भीष्म बना, भीष्म नाम पीछे पड़ा, पहले तो इनका नाम देवव्रत था, देवताओं के समान व्रत करने वाले, बड़े संयमी, सदाचारी थे, यहाँ तक कि इतना बड़ा ब्रह्मचारी आज तक कोई नहीं हुआ और इनको जो सम्मान मिला, पितृश्वरों के श्राद्ध में सबसे पहले भीष्म का नाम लिया जाता है। ये अपने पिता शान्तनु के पास रहने लग गए और इस तरह से (भीष्म) देवव्रत इनका नाम था।

" एक में भाव और कहीं अभाव नहीं, ये `अनन्यता' है।
एक में भाव और अन्यत्र अभाव होना, ये `संकीर्णता' है। "

अंतर्मुखता में ही अध्यात्मरस

(श्रीबाबामहाराज के सत्संग
(१२/९/२०१०) से संग्रहीत)

लेखिका – व्यासाचार्या - श्रीजी शर्मा, मानमन्दिर

दो चीजों को समझो – एक तो है 'ब्रह्मयोग' और दूसरा है 'बाह्ययोग'। इन योगों का वर्णन भगवान् ने गीता में किया है –

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते

(श्रीगीताजी ५/२१)

मन के भीतर दो योग हैं, जो भगवान् की ओर जाता है, वह ब्रह्मयोग है और जो बाहर की ओर जाता है, उसे बाह्ययोग कहते हैं। हमारा मन कब 'ब्रह्मयोग'

में है और कब 'बाह्ययोग' में है, यह स्वयं सोचना पड़ेगा । इसे कोई दूसरा व्यक्ति बताने नहीं आयेगा चाहे वह कितना बड़ा महापुरुष हो । बाह्य स्पर्शों से जो भोग प्राप्त होते हैं, उसे बाह्ययोग कहते हैं, जैसे – लड्डू का जब तक जीभ से स्पर्श नहीं होगा, तब तक मीठेपन का अनुभव नहीं होगा । इसी प्रकार आँख जब तक किसी के रूप को किरणों के द्वारा स्पर्श नहीं करगी, तब तक रूप का ज्ञान नहीं होगा और जब तक शब्द कर्णेन्द्रिय को स्पर्श नहीं करेगा, तब तक स्पर्श का ज्ञान नहीं होगा । इस प्रकार जितने भी स्पर्शज भोग हैं, ये जीव को बहिर्मुख कर देते हैं; इसमें किसी के लिए रियायत नहीं है चाहे वह विद्वान हो, चाहे कितना महान व्यक्ति हो । अतः हमें अन्तर्मुख होने के लिए, ब्रह्मयोग प्राप्त करने के लिए बाहरी जितने भी स्पर्शज सुख हैं, उनसे असंग (असक्त) होना पड़ेगा । ऐसा नहीं हो सकता कि हम भोग भोगते जाएँ और सोचें कि **'कृष्णरस'** मिल जाए, यह असम्भव व अपने आपको धोखा देना है । इस सिद्धान्त को वेद, भागवत, गीता, रसिकों की वाणी आदि सभी में बताया गया है । जब तक तुम संस्पर्शज भोग (सांसारिक विषय-भोग) में रहोगे तब तक तुम्हें कोई भी आशा नहीं करनी चाहिए, केवल अपने मन को धोखा देना है ।हम साधु बन गये तब भी उससे कोई लाभ नहीं है,जब तक हम स्पर्शज भोग से दूर नहीं हैं । सोते समय स्वप्न देख रहे हैं कि कहीं पंगत हो रही है और हमने उस पंगत में खूब खीर खाई और जब नींद खुली तो भूखे के भूखे ही रहे, उस स्वप्न की खीर से पेट नहीं भरा, वैसे ही यह मैथुन-क्रिया भी एक स्वाप्निक सुख है, इससे पेट भरने, तृप्ति होने के स्थान पर मनुष्य की कामाग्नि और बढ़ती है, इसीलिये शास्त्र में इसे स्वाप्निक सुख (क्षणिक सुख) माना गया है । स्वाप्निक सुख (विनाशी विषय-सुख) से मनुष्य को कभी भी तत्त्वज्ञान नहीं हो सकता । स्त्री-पुरुष का भोग दुःख की योनि (पतन ही पतन) है, जिससे जीव की 'इन्द्रिय, मन, प्राण, शरीर, धर्म, धृति, बुद्धि, लज्जा, श्री, तेज, स्मृति, सत्य' ये १२ शक्तियाँ घट जाती हैं । हम साधु बन गये तो भी उससे कोई लाभ नहीं है, जब तक हम स्पर्शज भोग (मैथुनी भोग) से दूर नहीं हैं । संस्पर्शज भोग में केवल स्त्री-भोग ही नहीं आता है, हम साधु लोग लड्डू-पेड़ा की पंगत के लिए बहुत दौड़ते हैं, यह जिह्वा का भोग है, ये सब गलत है । इस प्रकार बाह्य स्पर्श (इन्द्रिय-सुखों) के प्रति जब आत्मा असक्त (detached) हो जाएगी तब उसको भीतर का सुख मिलेगा, इसको ब्रह्मयोग कहते हैं । **"स ब्रह्मयोग युक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते"** इसके पहले भगवत्प्रेम (भगवद्रस) का अनुभव नहीं होता है । जो व्यक्ति देह-गेह के भोगों में आसक्त होकर भी भगवत्प्रेम (भगवदानन्द) का दावा करता है, वह गलत है, वस्तुतः वह आडम्बरी (ढोंगी) है, उसको भगवद्रस मिल ही नहीं सकता और जब तक स्पर्शज भोग हैं, ये अनन्त दुःख देते रहेंगे; चाहे कोई साधु बन जाए, महन्त बन जाए, रसिक बन जाए, भक्त बन जाए । यह एक सार्वभौमिक सत्य सिद्धान्त है । जितने स्पर्शज भोग हैं, वे दुःख-योनि हैं, वे सदा अनन्तकाल तक दुःख देते रहेंगे।

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ।।

(श्रीगीताजी ५/२२)

'आद्यन्तवन्तः' – क्योंकि वे आदि-अन्त वाले हैं, लड्डू मिला तो उसका आनन्द मुख में थोड़ी देर को ही मिलेगा, फिर खाने के बाद वह मल बनकर शरीर से निकल जाएगा । कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति उसमें रमण नहीं करेगा । इस प्रकार मेरा आशय यह है कि चाहे वेद वाणी हो अथवा कोई भी वाणी हो, जैसा कि श्रीमद्भागवत (५/११/३) में बताया गया एवं रसिकों ने भी कहा कि जितनी भी श्रेष्ठ वाणियाँ हैं, वे जब तक प्राकृत भाव उत्पन्न करती हैं तब तक तत्त्वज्ञान नहीं हो सकता । हम लोग जो दावा करते हैं कि हमें अनुभव हो गया है, सरासर झूठ है । तत्त्व ग्रहण हो ही नहीं सकता । इसलिए सभी को समझ-बूझकर इस अध्यात्म-पथ पर चलना चाहिए, अपने को धोखा नहीं देना चाहिए । छल-कपट को छोड़ देना चाहिए । प्राकृत भाव में सबसे प्रधान होता है – काम भाव । इस तथ्य को विभिन्न भावों में संत-महापुरुषों ने कहा है –

जहाँ राम तहाँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम ।
तुलसी कहु कैसे रहें, रवि रजनी इक ठाम ।।

(गोस्वामीतुलसीदासजी कृत दोहावली)

यह एक छोटा-सा दोहा है किन्तु सार है । जहाँ राम हैं वहाँ काम है ही नहीं । सनकादिक कुमारों ने राजा

पृथु को यही उपदेश दिया कि राजन् यदि भगवत्प्रेम आ जाएगा तो काम नष्ट हो जाएगा, रुक ही नहीं सकता ।

रतिर्दुरापा विधुनोति नैष्ठिकी
कामं कषायं मलमन्तरात्मनः ।।

(श्रीभागवतजी ४/२२/२०)

जो नैष्ठिकी रति है उसका प्राप्त होना कठिन है, ऐसा नहीं कि जैसे कोई घोषणा कर दे कि हम प्रेमी बन गये, भक्तराज बन गये, हम रसिकराज बन गये, यह सब बिल्कुल गप्प है । उस रति की प्राप्ति अत्यधिक कठिन है, यदि प्राप्त हो गई तो कामरूपी कषाय को जड़ से नष्ट कर देती है । दुनिया के जितने भी कषाय हैं, उन सबका पिता है काम । अन्तरात्मा का सबसे बड़ा मल है काम, यदि काम नष्ट हो जाय तो लिंग शरीर भी नष्ट होजाएगा ।

यदा रतिर्ब्रह्मणि नैष्ठिकी पुमा-
नाचार्यवान् ज्ञानविरागरंहसा ।
दहत्यवीर्यं हृदयं जीवकोशं
पञ्चात्मकं योनिमिवोत्थितोऽग्निः ।।

(श्रीभागवतजी ४/२२/२६)

यह लिंग शरीर अथवा सूक्ष्म शरीर आग से नहीं जलेगा, पानी में नहीं डूबेगा, चिता पर नहीं जलेगा क्योंकि आग इसे छू नहीं सकती किन्तु उस सूक्ष्म शरीर को भगवद्रति जला देती है और इस तरह से जीव मुक्त हो जाता है । जीवकोश के अन्तर्गत पाँच कोश हैं – अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, विज्ञानमय कोश, मनोमय कोश और आनन्दमय कोश । भगवद्रति इन पाँचों कोशों को जला देती है और उसी समय जीव भगवान् को प्राप्त कर लेता है ।इस प्रसंग में एक महत्त्वपूर्ण प्रामाणिक वैदिक कथा भी है 'बृहदारण्य उपनिषद' से । महर्षि याज्ञवल्क्यजी की दो पत्नियाँ थीं – मैत्रेयी और कात्यायनी । भारतवर्ष के प्रसिद्ध राजा ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के लिए महर्षि याज्ञवल्क्यजी के पास आया करते थे और उनको अपार धन-सम्पत्ति भेंट में दिया करते थे परन्तु वह तो महात्मा थे, उनकी धन में कोई आसक्ति नहीं थी किन्तु लगातार भेंट में आते रहने के कारण उनके पास इतनी सम्पत्ति एकत्रित हो गई थी, जितनी बड़े-बड़े वैभवशाली राजा-महाराजाओं के पास भी नहीं थी । याज्ञवल्क्यजी तो असंग थे, उनके चित्त पर इस विशाल धनराशि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था, वह तो इसे असक्त भाव से देखा करते थे, कोई धन रख गया तो उन्हें कोई मतलब नहीं था और नहीं रखा तब भी उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था । असंग महात्मा को सम्पत्ति कभी बाँध नहीं सकती । हम जैसे लोगों को यह बांधती है, नहीं है तो धन को तरसा करते हैं, झूठे त्यागी हैं । सच्चे त्यागी महात्माओं के पास अनन्त सम्पत्ति होने पर भी उन्हें छू नहीं सकती । इसका सम्बन्ध मन से होता है ।

एक बार याज्ञवल्क्यजी ने सोचा कि मेरे पास अपार सम्पत्ति जुड़ गई है, इस झगड़े को हटाना चाहिए । उन्होंने अपनी दोनों स्त्रियों को बुलाया और कहा कि तुम लोग इस सम्पत्ति को आधा-आधा बाँट लो । कात्यायनी बड़ी प्रसन्न हुई, वह हम जैसी कोई धन-लोलुप रही होगी, सोचने लगी – 'वाह ! खूब माल मिल गया ।' लेकिन मैत्रेयी बोली –

येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्यां,
यदेव भगवान्वेद तदेव मे ब्रूहीति ।।

(बृहदारण्यकोपनिषद् २/४/३)

'अरे ! यह आप क्या दे रहे हैं ? मुझे विष दे रहे हैं । सुख तो भूमापुरुष (ब्रह्म) में है, क्या इन नश्वर वस्तुओं में सुख हो सकता है ? जिससे मैं अमृतत्त्व को न प्राप्त कर सकूँ, उसे लेकर क्या करूँगी? इन मायिक पदार्थों सोना-चाँदी को लेकर मैं क्या करूँगी ? मैं इसे छू नहीं सकती । हे नाथ ! जो कुछ अमृतत्त्व का साधन हो, उसे ही मुझे उपदेश करें ।' याज्ञवल्क्यजी बोले – "ठीक है, जब तुम इस सम्पत्ति को छूना भी नहीं चाहती हो तो इसे कात्यायनी रख ले।" अब तो कात्यायनी अत्यधिक प्रसन्न हो गई क्योंकि उसे सारा का सारा माल मिल गया, सोना-चाँदी, हीरे-जवाहरात की अपार राशि उसके हिस्से में आ गई । एक स्त्री कात्यायनी तो संसार की प्राप्ति से प्रसन्न हो गई, जबकि दूसरी स्त्री मैत्रेयी संसार का त्याग करके प्रसन्न हुई । दोनों उदाहरण हैं और वह भी एक ही ऋषि के पास हैं, यह भी आश्चर्य है, दोनों ही उनकी स्त्रियाँ हैं । अतः यह कोई आवश्यक नहीं है कि सत्संग करने वाले सभी मनुष्यों की वृत्तियाँ एक समान हो । सत्संग में त्यागी भी बैठता है और कामी भी बैठता है । किसी संत ने प्रश्न किया था कि ऐसा क्यों होता है कि बहुत दिन सत्संग में रहने के बावजूद भी कुछ लोगों के स्वभाव में विषमता देखी जाती है, इसका

कारण क्या है ? इसको याज्ञवल्क्यजी के जीवन से समझा जा सकता है । एक ही असंग ऋषि की दो पत्नियों में एक ब्रह्मवादिनी थी और दूसरी भोगवादिनी थी, इसमें ऋषि का क्या दोष है ? हर जीव के अलग-अलग संस्कार होते हैं, सदासत् (अच्छे-बुरे) संस्कार के अनुसार ही सत्संग का प्रभाव पड़ता है, मैत्रेयी के अच्छे संस्कार होने से अतिशीघ्र अन्तःकरण पवित्र होकर संसार से अनासक्त हो गया; जबकि कात्यायनी के कुसंस्कार होने से मन संसार में आसक्त हो गया, जिससे सांसारिक भोग-पदार्थ अच्छे लगने लगे । मैत्रेयी की असंगता को देखने के पश्चात् याज्ञवल्क्य जी ने उन्हें ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया और बोले – "अच्छा मैत्रेयी ! अब मैं तुझे ब्रह्मज्ञान प्रदान करता हूँ ।" याज्ञवल्क्य जी ने ज्ञानोपदेश में कुछ श्रुति मंत्र कहे हैं–"**न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति । न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति ।**" स्त्री को पति के सुख के लिए पति प्रिय नहीं होता है, अपने सुख की दृष्टि से पति प्रिय लगता है । इसी तरह पुरुष को स्त्री प्यारी है तो स्त्री के सुख के लिए वह प्यारी नहीं है, अपनी स्वयं की कामनापूर्ति के लिए स्त्री से प्रेम करता है । इस प्रकार जगत में केवल स्वार्थ का प्रेम व व्यवहार है । जैसे हम यदि मकान से प्रेम करें तो मकान से प्रेम नहीं है बल्कि अपनी कामना से प्रेम करते हैं कि मकान के भीतर हमारे शरीर व मन-इन्द्रियों को सुख मिलेगा । यही बात भगवान् ने भी भागवत में गोपियों के समक्ष कही कि संसार में कोई भी स्त्री अपने पति से प्रेम नहीं कर सकती और कोई भी पति अपनी स्त्री से प्रेम नहीं कर सकता; यह केवल आडम्बर है –

मिथो भजन्ति ये सख्यः स्वार्थैकान्तोद्यमा हि ते ।
न तत्र सौहृदं धर्मः स्वार्थार्थं तद्धिनान्यथा॥(भागवत १०/३२/१७)

स्त्री-पुरुष के प्रेम में केवल स्वार्थ है और कुछ नहीं है, प्रेम की गन्ध भी नहीं है वहाँ, एकमात्र स्वार्थ के अलावा और कुछ नहीं है । वहाँ न तो सौहृद (प्यार) है, न धर्म है । गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी रामायण में यही कहा है –

सुर नर मुनि सब कै यह रीती ।
स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती ।।

(रामचरितमानस, किष्किन्धाकाण्ड -१२)

देवता बन जाओगे तब भी तुम केवल अपने स्वार्थ से ही प्यार करोगे । मुनि बन जाओगे तब भी स्वार्थ से प्रेम करोगे । हम लोग साधु बनकर भी जो धन भेंट करेगा, उसी को प्रेम करेंगे । पुजारी भी उसी को प्रसाद देता है जो पैसा चढ़ाता है । इसलिए प्रेम तो संसार में है ही नहीं ।

इसलिए याज्ञवल्क्यजी ने कहा –

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम् ॥

(बृहदारण्यकोपनिषद् २.४.५)

"हे मैत्रेयी ! आत्मा अर्थात् भगवान् ही दर्शनीय, श्रवणनीय तथा ज्ञेय व श्रेय-प्रेय हैं ।"

अतः वास्तविक विद्या वही है, जो जीव को वास्तविक वस्तु भगवत्प्रेम की प्राप्ति करा दे, इसे '**अध्यात्म-विद्या**' कहते हैं ।

"वास्तव में जीव का विनाश कुसंग से होता है । कुसंग आकाश से नहीं आता, हम जैसे साधु लोग ही कुसंग देते हैं । इसके कारण अच्छे साधक भी बहक जाते हैं ।"

नामाभास मात्र से कल्याण

(व्यासाचार्या मुरलिकाजी की भागवत-कथा से संग्रहीत)

लेखिका – साध्वी गौरीजी, मानमन्दिर, गह्वरवन

भागवतजी में अजामिलोपाख्यान बहुत प्रसिद्ध उपाख्यान है, लोग सोचते हैं कि यह नाम-महिमा को प्रकट करने वाला उपाख्यान है किन्तु अजामिल का चरित्र नाम-महिमा को प्रकट करने वाला नहीं अपितु नामाभास की महिमा को प्रकट करने वाला उपाख्यान है। नामाभास क्या है ? नामी का लक्ष्य लेकर नाम लेना तो 'नाम' है लेकिन हम नाम भगवान् का ले रहे हैं किन्तु लक्ष्य कुछ और बना हुआ है तो यह नामाभास है। अजामिल के साथ यही हुआ, अन्तिम समय वह बुला तो बेटे को रहा था 'नारायण' कहकर लेकिन 'नारायण' नाम तो भगवान् का है, उसका कल्याण हुआ। तो इसका मतलब 'नाम' से कल्याण नहीं हुआ अजामिल का, 'नामाभास' से कल्याण हुआ। अजामिल के चरित्र से दो चीजें स्पष्ट होती हैं – एक तो दुसंग की प्रबलता और दूसरा नामाभास की महिमा। दुसंग कितना प्रबल होता है। अजामिल का सदाचारी-जीवन भी वर्णित है भागवतजी में –

अयं हि श्रुतसम्पन्नः शीलवृत्तगुणालयः।
धृतव्रतो मृदुर्दान्तः सत्यवान्मंत्रविच्छुचिः॥

(श्रीमद्भागवत ६/१/५६)

अजामिल जैसे सदाचारी, शुद्ध, वेदज्ञ-शास्त्रज्ञ, ब्राह्मण को भी केवल एक क्षण के दुसंग ने ऐसे निम्न स्तर पर पहुँचा दिया कि वही शुद्ध सदाचारी ब्राह्मण मदिरापान करने लगा, वेश्यागामी हो गया, क्रूर कर्म व हिंसायें करने लगा, उस उच्च स्थिति से ऐसा घोर पतन हुआ; गलती यह हुई थी कि अजामिल ने वेश्या और एक शूद्र का संभोग देखा था।

इसलिए हम लोगों को सतत् सावधान रहना चाहिए। एक सिद्धान्त है कि **'धारणा-शक्ति'** से ही जीव कुसंग से बच सकता है। भागवतजी में भीष्मपितामहजी के प्रसंग में एक बहुत सुंदर श्लोक है –

विशुद्धया धारणया हताशुभ-
स्तदीक्षयैवाशु गतायुधव्यथः।
निवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिविभ्रम-
स्तुष्टाव जन्यं विसृजञ्जनार्दनम्॥

(भागवत १/९/३१)

धारणा में ये शक्ति है जो पाप को नष्ट करने करने वाली है। धारणा क्या है ? निश्चयात्मिका भावना का नाम धारणा है।

"बीती ताहि बिसारि के आगे की सुधि लेहु।"

अब तक हमसे जो बिगड़ा सो बिगड़ा, आज के बाद हम नहीं बिगड़ने देंगे" मन में इस भावना का दृढ़ता से बैठना ही धारणा है।

गोस्वामी तुलसीदासजी का पद है –

"अब लौं नसानी अब न नसैहौं।
राम कृपा भव निसा सिरानी, जागे पुनि न डसैहौं।"

'अब लौं नसानी' अब तक तो मैं नष्ट हुआ, पर 'अब न नसैहौं' अब मैं नष्ट नहीं होऊँगा। नष्ट न होने का निश्चय कर लेना ही धारणा है। ये बात मन में दृढ़ता से बैठ जाए कि अब हम जीवन को नष्ट नहीं होने देंगे, इतने मात्र से पापों का क्षरण होना शुरू जायेगा, पाप नष्ट होने शुरू हो जायेंगे। धारणा से ही अशुभ नष्ट हो जाते हैं। इसलिए गोस्वामी तुलसीदासजी का ये बहुत सुन्दर पद है धारणा के विषय में – 'हे नाथ ! अब तक तो मैं नष्ट हुआ, अब नहीं नष्ट होऊँगा। आपकी कृपा से मेरे जीवन में सबेरा हो गया है। कैसा सबेरा? ये ८४ लाख योनियाँ तो अन्धकार है और मानव जीवन सबेरा है। इस जीवन को पाकर अब मैं फिर से नहीं सोऊँगा विषयों की रात में और मैंने यह निश्चय कर लिया है -मन मधुकर पन कै तुलसी रघुपति पद कमल बसैहौं।अब लौं नसानी अब न नसैहौं - गोस्वामीजी महाराज कहते हैं -प्रभो ! मैंने अपने मन को मधुकर यानी भौंरा बना लिया है और शूकर की आदत होती है मल खाने की, विष्ठा खाने की किन्तु मेरा मन अब शूकर नहीं है। अब ये भौंरा बन गया है। भौंरा क्या पीता है, पुष्प का रस। मैंने अपने मन रूपी भौंरे को राम जी के चरणकमलों का भौंरा बना दिया है। अब ये मन रूपी भौंरा पियेगा तो चरणकमलों का रस ही पियेगा, बाकी विषयों का रस ये मनरूपी भ्रमर नहीं पियेगा। ऐसी मन में धारणा कर लो, बस इसी धारणा से सभी कार्य सिद्ध हो जायेंगे। यही है धारणा। अजामिल का जीवन कि वह मदिरापी हुआ, वह वेश्यागामी हुआ, वह क्रूरकर्मा हुआ लेकिन संत वैष्णवों की कृपा एक दिन अजामिल के ऊपर हुई। भक्तों के कहने से उसने अपने पुत्र का नाम नारायण रखा। सब लोग जानते हैं कि मरते समय 'नारायण' नाम लेने से वहाँ विष्णु दूत पहुँच गये, अजामिल को लेने के लिए; क्योंकि भागवतकार कह रहे हैं-

तस्मात् सङ्कीर्तनं विष्णोर्जगन्मङ्गलमंहसाम्।
महतामपि कौरव्य विद्ध्यैकान्तिकनिष्कृतम्॥

(भागवत ६/३/३१)

भगवन्नाम ही सबसे बड़ा प्रायश्चित है |

क्रमशः

"किसी भी प्रकार से मन श्रीकृष्ण में लग जाये। चाहे वह किसी भी रस की लीला के गाने से लगे, काम से लगे, क्रोध से लगे, भय से लगे |"

श्याम-प्रेयसी
मीराजी की सत्संग-निष्ठा

(संतश्रीबरसानाशरणजी, मानमन्दिर, गहवरवन)

गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन ।
बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहिं बेद पुरान ॥

हे पार्वती ! संत समागम के समान दुनिया में कोई लाभ न था, न है और न होगा किन्तु बिना भगवान् की कृपा के सत्संग नहीं मिलता है और बिना सत्संग के भक्ति नहीं मिलती है। इसीलिये श्रीमीराजी की संत-भक्त संग के प्रति दृढ़ निष्ठा थी । अनेक विपत्तियों के आने पर भी उन्होंने भक्त-संग नहीं छोड़ा । भक्तजनों को साक्षात् भगवान् समझकर उनकी सेवा करती थीं और भाव रखती थीं।

उन्होंने इस बात को एक पद में कहा भी है –

"अरसठ तीरथ सन्तों के चरणन,
कोटि कासी कोटि गंग रे ।
मीरां के प्रभु गिरधरनागर,
संतोनी रज म्हारे अंग रे ।।"

लोग पवित्र होने के लिये तीर्थों में जाते हैं, गंगाजी जाते हैं किन्तु मीराजी बोलीं कि मैं कहीं नहीं जाती हूँ, मैं तो केवल भक्तों की चरण रज अपने अंगों पर लगाती हूँ और हमेशा पवित्र रहती हूँ क्योंकि भक्तों की चरणरज में करोड़ों गंगाओं से ज्यादा पवित्रता है ।

ऐसी निष्ठा थी उनकी संतों-भक्तों के प्रति। यद्यपि राज्य सत्ता की ओर से सैकड़ों प्रयत्न हुए कि मीरा संत संग करना छोड़ दे किन्तु मीरा जी ने भक्तों का संग कभी नहीं छोड़ा।

राणा सांगा ने अपनी पुत्री ऊदाबाई को भेजा था कि जाओ और अपनी भाभी-सा अर्थात् मीरा को समझाओ कि वह साधुओं का संग करना छोड़ दे अगर नहीं माने तो उससे कह देना कि इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा। राणा जी की आज्ञा से ऊदाबाई गईं और मीरा जी से कहा –

भाभी मानो बात हमारी ।
राणो रोस कियो थां ऊपर, साधों में मत जारी ।।
साधां रे संग वन वन भटको, लाज गमाई सारी ।
बड़ा घरा थे जनम लियो छै, नाचो दै दै तारी ।।

भाभी-सा ! राणाजी तुम पर बहुत रुष्ट हैं, उन्होंने मुझे भेजकर कहलवाया है कि अगर तुम साधु-संग करना बंद नहीं करती हो तो ठीक नहीं होगा, इसलिए भाभी-सा ! राणाजी की बात मान लो और भक्त-संग करना बंद कर दो क्योंकि अब तुम राजरानी बन गयी हो, तुम्हें लज्जा नहीं आती, साधुओं के साथ वन-वनान्तरों में घूमती हो और उनके मध्य नाचती हो ।

कही मीरा मैं नहीं लजाऊँ ।
मैं नहिं खोटा कर्म कमाऊँ ।।
मुक्ति हेतु करि संत प्रसंगा ।
मैं नाचत गिरिधारी रंगा ।।

तब श्रीमीरा जी बोलीं – ऊदाबाई ! इसमें लज्जा कैसी? अरे, मैं कोई पापकर्म (चोरी, छिनारी..आदि) तो करती नहीं हूँ, भव सागर से पार जाने के लिये भगवान् के भक्तों का ही तो संग करती हूँ क्योंकि शास्त्रों में कहा गया है –

महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्ते-
स्तमोद्वारं योषितां सङ्गिसङ्गम् ।

(श्रीमद्भागवत ५/५/२)

संत संग अपबर्ग कर कामी भव कर पंथ ।
कहहिं संत कबि कोबिद श्रुति पुरान सदग्रंथ ॥

(रामचरितमानस,उत्तर. ३३)

'संतों का संग मुक्ति का खुला दरवाजा है और विषयी पुरुषों का संग नरक का दरवाजा है । इसलिए मैं विषईयों का संग छोड़कर भक्तों का ही संग करती हूँ ।' और ऊदाबाई तुम जो कहती हो कि लज्जा छोड़कर नाचती क्यों हो ? तो सुनो मैं किसी संसारी पुरुष को रिझाने के लिये तो नाचती नहीं हूँ । मैं तो अपने गिरिधर को रिझाने के लिए नाचती-गाती हूँ क्योंकि यह हमारे गिरिधारी की आज्ञा है –

विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥

(भागवत ११/१४/२४)

'जो लज्जा छोड़कर प्रभु के लिये नाचता-गाता है, ऐसा भक्त सारे संसार को पवित्र कर देता है ।

आगे श्रीमीरा जी कहती हैं कि ऊदाबाई ! तुमने जो कहा कि राजरानी होकर लोकलज्जा का परित्याग करना ठीक नहीं है तो सुनो –

इह तन राज तिया ह्वै लाजहि ।
हरि भक्तनी सूँ संका साजहि ।।
सो तन जरि बरि भस्मी होई ।
ता परि बायस विष्ट विगोई ।।

‘शरीर चाहे राजरानी का हो या किसी और का आखिर है तो ये अधम मल-मूत्र का पिण्ड ही, जो इस अधम शरीर के लिये भक्तों से लजाती है, उस शरीर की क्या गति होगी, वह जलकर राख बन जाएगा और उस राख के ऊपर कौए विष्ठा करेंगे और भक्तों से लज्जा करने के कारण उसको अगले जन्म में गधैया, कुतिया और सुअरिया बनना पड़ेगा।

अरु सो अपर जन्म नृप रानी।
धारै तन खर सूकर श्वानी।।

वहाँ जब वह नग्न घूमेगी तब वह राज-लज्जा कहाँ चली जाएगी।

तब उहि राज लाज कत जाई।
असनहीन जग दीन फिराई।।

इसलिए ऊदाबाई ! मैंने राजलज्जा को छोड़ दिया है और भक्तों का संग करती हूँ, जिससे श्रीकृष्ण की प्राप्ति होगी।

राज लाज को कछू न नेमा।
ता तें भलो संत पद प्रेमा।।
जा करि पइये कृष्ण मुरारी।

कहाँ तक कहूँ मेरे प्राण तो संतों के संग लगे हैं, वहाँ से अब दूर नहीं होंगे अर्थात् उनका संग अगर छूटा तो मेरे प्राण भी छूट जायेंगे।

प्राण संग लागे मम संता।
ते तो दूरी न होय अनंता।।

जिनको संतजन अच्छे नहीं लगते हों वह मत आये हमारे पास। मैं कुल को भले ही छोड़ दूँगी किन्तु भक्तों का संग नहीं छोड़ सकती हूँ।

जा कूँ संत संग नहिं भावहि।
सो मति सतसंगति में आवहि।।
मेरे तो नहिं कुल को नातो।
हरि भक्तनि ही सूँ मन रातो।।

अंत में मीराजी ने आवेश में कहा कि ऊदाबाई ! जाकर राणाजी से कह दो, मैं उनकी बात नहीं मान सकती क्योंकि मैंने तो स्वयं को संतों के हाथ में बेच दिया है।

राणा ने समझावो जावो, मैं तो बात न मानी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, संतां हाथ बिकानी।।

ऊदाबाई ने जाकर अपने पिता चित्तौड़ाधीश राणा सांगा को जाकर बताया कि भाभी-सा ने आपकी बात मानने से इन्कार कर दिया है। तब राणाजी ने रुष्ट होकर मीराजी को मारने के लिये जहर भेजा –

सुनिकै कटोरा भरि गरल पठाय दियौ,
लियौ करि पान रंग चढ्यौ यों निहारियै ॥

मीराजी सहर्ष जहर का पान कर गईं किन्तु उस विष से उनका बार भी बांका नहीं हुआ –

बार न बाँकौ भयौ, गरल अमृत ज्यौं पीयौ ॥

जब जहर से श्रीमीराजी का कुछ नहीं बिगड़ा तब राणाजी ने उनके पीहर (मेड़ते) में पत्र भेजा कि मीरा दिन-रात साधुओं के संग में डोलती रहती है, न तो यह अपने पति भोजराज की बात मानती है और न ही अपने सास-श्वशुर की, अब आप लोग इसको समझावें।

तब परिवारीजनों ने मेड़ते से मीराजी के पास पत्र लिखकर भेजा और उन्हें समझाया कि मीरा तू कुल को दाग क्यों लगाती है, साधुओं का संग छोड़ और अपने पति की आज्ञा का पालन कर, उनकी सेवा कर यही वेद-पुराणों में पतिव्रता का धर्म बताया गया है –

मेड़तियारा कागद आया,
बाई मीराँ ने जा खीज्यो जी।
वोहत भाँति से लिख्या ओलमा,
कुलकै दाग मत दीज्यो जी।।
साधां को संग परो निवारो,
वेद साख सुण लीज्यो जी।।
मीराँ प्रभु को संग छांड्यो,
पति आज्ञा में रीज्यो जी।।

तब श्रीमीराजी ने उस पत्र के जवाब में अपनी माँ के नाम पत्र भेजा और उस पत्र में लिखा कि माँ मैं तो सर्वदा अपने पति की ही आज्ञा में रहती हूँ, हमारे पति अर्थात् गिरिधरगोपाल की ही आज्ञा है –

‘मद्भक्तपूजाभ्यधिका’ (श्रीमद्भागवत ११/१९/२१)

‘मेरे भक्त की सेवा मुझसे बढ़कर है।’

इसीलिये अपने पति की ही आज्ञा मानकर मैं गिरधर से भी बढ़कर संतों की सेवा करती हूँ।

हमारे पति श्रीकृष्ण की ही आज्ञा है -

सङ्गं न कुर्यादसतां शिश्नोदरतृपां क्वचित्।
तस्यानुगस्तमस्यन्धे पतत्यन्धानुगान्धवत् ॥

(भागवत ११/२६/०३)

‘जो शिश्न और उदर पोषी विषयी लोग हैं उनका संग कभी नहीं करनी चाहिए क्योंकि उनका संग करने से घोर अन्धकार अर्थात् नरकों की प्राप्ति होती है।’

इसीलिये माँ, मैं सदैव अपने पति की ही आज्ञा पालन करती हूँ, सब समझते हैं कि मेरा पति भोजराज है

****

लेकिन माँ मेरा पति भोजराज नहीं मेरे पति तो गिरिधरगोपाल हैं।

गिरधर म्हारा साँचा पति छै,
मैं गिरधर री दासी हे माय।
राणाजी म्हाँसूं रूस रह्यो छै,
कूड़ा वचन सुनाया भोलि माय।।
गुरू कृपा सूं संत पधार्‌या
संतां स्याम मिलाया भोलि माय।।

अस्तु जब पत्र व्यवहार का भी मीराजी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा अर्थात् उन्होंने सत्संग करना नहीं त्यागा तो राणाजी ने उन्हें लोक निन्दा का भय दिखाया कि लोक निंदा के भय से ये संत-संग करना छोड़ देगी। ऊदाबाई को भेजा कि जाकर अपनी भाभी-सा से कह दो वह साधुओं के मध्य में नाचती है, उनके साथ में घूमती है, सारे चित्तौड़ में तेरी निंदा हो रही है, तब ऊदाबाई ने जाकर मीराजी से कहा –

भाभी मीराँ साधां का संग निवार,
सारो शहर थारी निन्दा करै।।

लेकिन मीरा जी तो सच्ची भक्ता थीं, वह लोक निंदा से कब डरने वालीं ? भक्तजन निंदा से नहीं डरते अपितु आत्मनिंदा से तो प्रेम करते हैं, भक्त डरते हैं तो विमुखों के द्वारा की गयी झूठी प्रशंसा से।

मीरा जी ने उत्तर दिया -

बाई ऊदाँ करे तो पड्या झख मारो,
मन लाग्यो रमता राम सूं।।

ऊदा ! हमें तो यह बदनामी मीठी लगती है –

मोहि यह बदनामी लागै मीठी।
कोई निन्दो कोई बिन्दो, मैं तो चलूँगी चाल अनूठी।।

जब लोक-निन्दा के भय से भी मीरा पर कोई असर नहीं हुआ, तब राणा जी ने अंत में लोभ दिखाया कि मीरा तू केवल साधु-संग करना छोड़ दे, आधा राज्य हम तुझे दे देंगे –

'साधो री संगत छोड़ दो मीरा आधो राज तुम्हारो।'

यद्यपि लोभ रूपी अस्त्र ये राम बाण है अर्थात् अमोघ है, लोभ से कोई बच नहीं पाता, सुग्रीवजी ने मानस जी में कहा था कि जो लोभ से बच जाता है वह भगवान् के समान बन जाता है, तो राणाजी ने आधा राज्य तक देने को कह दिया कि साधु संग-करना छोड़ और आधा राज्य तेरा किन्तु मीरा जी पर इस लोभ रूपी अमोघ अस्त्र का कोई प्रभाव नहीं पड़ा और उन्होंने जवाब दिया–

राज करे वानें करने दीज्यो,
मैं भगतां री दास।
साधां की संगत नहीं छोडूँ राणा
जल जाबो राज तुम्हारो।
मीराँ ने श्रीगिरिधर मिलिया,
मिलिया वंशीबारो।।

राणा जी तुम चाहो अपने राज्य में आग लगा दो, हमें तुम्हारे राज्य से कोई लेना-देना नहीं है, मैं भक्तों का संग कभी नहीं छोडूंगी क्योंकि इन्हीं के संग से हमें मुरलीमनोहर श्यामसुन्दर मिल गए क्योंकि श्रीकृष्ण की कृपा तब होती है जब उनके भक्तों की सेवा, उनका संग किया जाता है –

मानत सुख सेवक सेवकाई।

आगे मीरा जी बोलीं – राणा जी ! तुम करोड़ों बार मुझे शिक्षा दो लेकिन मुझपर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

साधू संगत में दिल राजी, भई कुटुंब सूं न्यारी।
क्रोड़ बार समझावो मोकूँ, चलूँगी बुद्ध हमारी।।

मैं तो अपनी बुद्धि से ही चलूँगी अर्थात् संसारी लोगों से दूर रहकर भक्तों का ही संग करूँगी।

साधु-संगति कर हरि सुख लीजै, जग सूँ दूर रहूँ।

अस्तु ऐसी निष्ठा थी श्रीमीराजी की भक्तों के प्रति। इसीलिये गिरिधर गोपाल दिन-रात उनके समीप रहते थे। बचपन से ही उनके अन्दर भक्तों के प्रति ऐसा भाव था, माँ के रोकने पर भी मीराजी संतों के पास जातीं थीं –

तू मत बरजै माई मैं तो साधा संगत को जाती।

भक्त-संग के प्रति सुदृढ निष्ठा उनके गुरु श्रीरैदास जी ने सिखाई थी –

गुरु म्हारा दीनदयाल हीरां रा पारखी।
दियो म्हाने ग्यान बताय, संगत कर साध री।

जब चित्तौड़ की गद्दी पर राणा विक्रमादित्य बैठा तो उसने मीरा जी के महल में संतों के आने पर सर्वथा रोक लगा दी थी तब मीरा जी ने उसी समय चित्तौड़ का त्याग कर दिया –

नहिं भावै थारो देशड़ लोजी रंगरूड़ो।
थारा देशा में राणा साधु नहीं छै,लोग बसैं सब कूड़ो।।

इस सिद्धांत का प्रतिपादन श्रीमद्भागवत जी में किया गया कि जहाँ तीन चीजें न हों वहां आत्म कल्याण के इच्छुक व्यक्ति को कभी नहीं रहना चाहिए –

न यत्र वैकुण्ठकथासुधापगा
न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः ।
न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः
सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम् ॥

(भागवत ५/१९/२४)

१. कथामृत की नदी, २. भगवान् के आश्रित सन्तजन, ३. भगवान् के उत्सव-महोत्सव अर्थात् संकीर्तन यज्ञ नृत्य-गीतादि के साथ।

जहाँ ये तीन चीजें नहीं हैं, वहाँ एक क्षण को भी मत रहना, चाहे तुमको इन्द्रलोक-ब्रह्मलोक ही क्यों न मिल जाएँ। यही बात बड़े-बड़े आचार्यों ने कही कि ब्रह्मपद भी मिल रहा है तो उसे छोड़ दो किन्तु भक्तों का संग नहीं छोड़ो।

श्रीयामुनाचार्य जी ने कहा –

तव दास्यसुखैक संगिनां भवनेषु अस्तु अपि कीटजन्म मे ।
इतरावसथेषु मास्मभूदपि मे जन्म चतुर्मुखात्मना ।।

'मैं ब्रह्मा बनने से अच्छा भक्तों के यहाँ कीड़ा बनकर रहना अच्छा समझता हूँ।' क्योंकि ब्रह्मा बन जाने पर भी काल का भय बना रहता है। श्रीमद्भागवत में स्वयं भगवान् कृष्ण ने कहा है –

लोकानां लोकपालानां मद् भयं कल्पजीविनाम् ।
ब्रह्मणोऽपि भयं मत्तो द्विपरार्धपरायुषः ॥

(भागवत ११/१०/३०)

ब्रह्मा जी की भी आयु सीमित है द्विपरार्ध की, उसके बाद काल उनको भी ग्रस लेता है अर्थात् पुण्य क्षीण हो जाने पर वहाँ से भी नीचे गिरना पड़ता है –

क्षीणपुण्यः पतत्यर्वाग् अनिच्छन् कालचालितः ॥

(श्रीमद्भागवत ११/१०/२६)

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥

(गीता ८/१६)

ब्रह्मलोक तक माया है, वहाँ से निर्धारित समयावधि के बाद नीचे आना पड़ता है। भक्त के यहाँ कीड़े-मकोड़े बनेंगे तो वहाँ दिन-रात भगवद्गुणगान सुनने को मिलेगा और कभी न कभी भगवान् के नाम से उद्धार हो ही जाएगा। अस्तु यही रहनी श्रीमीराजी की थी, श्रीरघुराजसिंह जी ने रामरसिकावली में लिखा है –

रोजहिं संत जेवांय कै, रोजहि चरण पखारि ।
सलिल शीश मीरा धरही नयन प्रेम जल ढारि ।।
गिरिधर ढिग लै आप तमूरा ।
गावै सुन्दर पद रचि पूरा ।।

प्रतिदिन मीराजी पहले संतों की सेवा करतीं, उनका चरणोदक शिरोधार्य करती और फिर जो समय मिलता उसमें गिरिधारीलाल के समीप तमूरा लेकर स्वरचित पदों का गान कर उन्हें रिझातीं थीं।

यदि भक्त-सेवा और भगवान् के गुणगान के प्रति किसी की निष्ठा हो जाये तो उसका कभी नाश नहीं हो सकता। यह महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य जी ने कहा है –

सेवायां वा कथायां वा यस्यासक्तिर्दृढा भवेत् ।
यावज्जीवं तस्य नाशो न क्वापीति मतिर्मम् ।।

"जीवाश्रय लिया और भगवदाश्रय नष्ट हुआ। शरीर, इन्द्रियों आदि में आसक्ति होना, ये सभी अन्याश्रय में आता है।"

महाराष्ट्र की मीरा 'सक्खूबाई'

श्रीबाबामहाराज के एकादशी-सत्संग से
संग्रहीत संकलनकर्त्री / लेखिका – साध्वी
मुकुंदप्रिया मानमंदिर, बरसाना

प्रभु आते हैं, जब कोई हृदय से, करुणा से उन्हें बुलाता है। सच्ची पुकार को सुनते हैं भगवान्। भारत में बहुत-सी भक्त देवियाँ हुई हैं, जैसे - मीराबाई, करमैतीबाई, रत्नावती आदि। ये सब ऐसी भक्त देवियाँ हुई हैं जिनकी पुकार पर प्रभु आये, ऐसी ही एक भक्त

देवी सक्खूबाई हुई हैं, ये महाराष्ट्र में कृष्णा नदी के किनारे कहुवाड़ गाँव में रहती थीं, ये भक्त तो थीं ही लेकिन भक्त भी कभी-कभी ऐसे बवंडर में फँस जाता है, जैसे - विभीषण को लंका में भजन करना पड़ा, जहाँ राम नाम लेना बड़ा कठिन था । जैसे - प्रह्लाद जी ने हिरण्यकशिपु के समय में भक्ति किया तो बहुत कठिनाई आई - आग में जलाये गए, पानी में डुबाये गए, पहाड़ों से कुचला गया, अस्त्र-शस्त्र बरसाए गए । ऐसी स्थिति में भजन करना बड़ा कठिन हो जाता है लेकिन सच्चे भक्त रुकते नहीं हैं, उसी का नाम भक्ति है, जैसे - आंधी आती है तो छोटे-मोटे पेड़ उखड़ जाते हैं लेकिन पहाड़ नहीं उखड़ता । ऐसे ही सच्चे भक्तों के सामने कोई भी मुसीबत रुक नहीं सकती, कोई बाधा उनको रोक नहीं सकती, आंधी में भी उनकी भक्ति का दीपक जलता रहता है ।

सक्खू बाई का ब्याह हुआ एक नास्तिक पति से जो भगवान् का नाम लेना जानता ही नही था और वैसे ही इनके सास-ससुर थे । घर में चार सदस्य थे, एक सक्खूबाई बहू के रूप में, एक उनके पति, एक सास और ससुर । इनके पति, सास और ससुर तीनों ही आसुरी स्वभाव के थे, दया तो उनमें थी ही नहीं जबकि सक्खूबाई भक्त थीं, ये काम करते हुए भी कीर्तन करती रहती थीं । गृहस्थ के कामों में पुराने जमाने में आटा पीसने के लिए चक्की स्वयं चलानी पड़ती थी । सक्खूबाई भी चक्की से आटा पीसती, गोबर से घर लीपती लेकिन साथ ही घर के सब काम करते समय कीर्तन करती रहती थीं । इस कारण उनके सास और ससुर उनसे बहुत चिढ़ते थे और पति देवता का तो कहना ही क्या । सास इनके पति के कान भरती थी कि कहाँ से इस वेश्या को ब्याह के लाया, दिन भर गुनगुन करती रहती है । सक्खू दिनभर भगवान् का नाम लेती, कृष्ण-कीर्तन करती रहती तो इनके ससुराल वाले इनसे चिढ़ते थे और पति तो अक्सर इन्हें गुस्से में पीटता था, डंडे लगाता था कि क्यों दिनभर गाती रहती है ।

कथा-कीर्तन व भक्त में प्रेम न होने का कारण है –

तुलसी पिछले पाप सों हरि चर्चा न सुहाय ।
जैसे ज्वर के अंश ते भोजन की रुचि जाय ।।

मनुष्य के पाप उसको भजन से रोकते हैं । बुखार बहुत तेज हो और खीर रख दो जीभ पर तो वह कड़वी ही लगेगी, ऐसे ही हमारे पाप हैं जो भगवान् के नाम से दूर करते हैं । लोग अपना जीवन नष्ट करते हैं, ताश खेलते हैं, हुक्का पीके गप्प मारते हैं । इस प्रकार इस दुर्लभ मनुष्य जीवन को ऐसे ही बेकार नष्ट कर देते हैं, भगवान् का कीर्तन नहीं कर सकते ।

कीर्तन करने के कारण सक्खू बाई का पति तो इन्हें पीटता ही था, इसके अलावा सास भी पीटती थी और कभी-कभी ससुर जी भी हाथ लगा देते थे लेकिन ये अपना कीर्तन नहीं छोड़ती थीं, भगवान् का नाम लेती रहती थीं और जिसकी भक्ति में लगन है उसको दुनिया में कोई रोक नहीं सकता चाहे वह हिरण्यकशिपु हो, चाहे रावण सामने आ जाए लेकिन भक्ति करने वाले को कोई रोक नहीं सकता ।

एक बार कृष्णा नदी के तट पर सक्खूबाई पानी भरने गयीं थीं । उसी समय वहां से वारकरी भक्त कीर्तन करते हुए पंडरपुर जा रहे थे । महाराष्ट्र में एकादशी के दिन दूर-दूर से लोग पंडरीनाथ भगवान् के दर्शन करने आते हैं, दस-दस कोस दूर से, बीस-बीस कोस दूर से पैदल चलते हुए कई दिन में पंडरपुर पहुँचते हैं, उनका नाम वारकरी भक्त होता है । ऐसे ही जब सक्खू बाई नदी से पानी भरने गयीं थीं तो एकादशी के दिन वहां से वारकरी भक्त नाचते-गाते, भगवान् के नाम का कीर्तन करते हुए पंडरीनाथ भगवान् के दर्शन करने जा रहे थे । उन्हें देखकर ये अपने आप को रोक नहीं पायीं और सोचने लग गयीं कि घर में तो रोज मेरी पिटाई होती है ही, एकदिन अच्छी तरह पीट लेंगे, चलो आज मैं भी इन भक्तों के साथ भगवान् पण्डरीनाथ के दर्शन कर आऊं । ऐसा सोचकर सक्खू ने पानी के घड़े को वहीं नदी के तट पर रख दिया और जो भक्त लोग कीर्तन करते हुए, नाचते-नाचते पंडरपुर जा रहे थे,वह भी उन्ही की टोल में सम्मिलित हो गयी और कीर्तन करते हुए भगवान् से प्रार्थना करने लगी-हे प्रभु!मैं बहुत दिन से सोच रही थी कि तुम्हारा दर्शन करुँगी, आज मैं तेरे नाम पर निकल पड़ीं हूँ, तू दया करना । जैसे ही सक्खू थोड़ी दूर ही गयी, इतने में गाँव का कोई आदमी सामने से आ रहा था,उसने सक्खू को पहचान लिया और सोचने लगा कि ये तो हमारे गाँव की बहू है, सक्खू इसका नाम है लेकिन यह तो कीर्तन करने वालों के साथ जा रही है, चलो दौड़ के इसके घर वालों को खबर कर दूँ कि तुम्हारी बहू भाग गयी । सक्खू का भागने का भाव नहीं था, उसका तो दर्शन करने का भाव था

****

लेकिन लोगों की आदत होती है जरा-सी बात को नमक मिर्च लगा (बढ़ा-चढ़ाकर कह) देते हैं, इसलिए वह आदमी सक्खू के घर गया और उसके पति तथा सास-ससुर से कहा – अरे, तुम्हारी बहू तो भाग गयी । उन लोगों ने पूछा - कहाँ भाग गयी, तो वह आदमी बोला कि कीर्तन करने वालों के साथ, अभी यहाँ से थोड़ी दूर वह उनके बीच जा रही थी, उसको शरम नहीं आई, सब नाच रहे थे, वह भी उनके साथ नाच रही थी । इतना सुनते ही पति और ससुर डंडा लेकर चल पड़े और थोड़ी दूर जाकर सक्खू को पकड़ लिया । कीर्तन वालों को क्या पता कि यह कौन है, किसकी बहू है, कोई क्यों किसी की बहू के लिए बोलेगा लेकिन कुछ कीर्तन वाले सक्खू के पति और ससुर से बोले - क्या करते हो, तो इन लोगों ने कहा – "यह हमारी बहू है, तुम लोग इसे भगा के ले जा रहे थे ।" इतना सुनते ही सब कीर्तन करने वाले भक्त घबड़ा गए कि ये तो हमारे ऊपर ही कलंक लगा रहे हैं अतः उन्होंने आगे कुछ नहीं कहा । अब तो सक्खू के पति और ससुर उसे खींच के घर लाये और बुरी तरह उसकी ऐसी पिटाई किया कि उसको हर तरह से पस्त कर दिया और एक कोठरी में बंद कर दिया । सास बोली - अब इसको इसी में पड़ा रहने दो, दो-चार दिन न खाने को मिलेगा न पीने को तो इसको अक्ल आ जायेगी और फिर कभी ऐसी बदमाशी नहीं करेगी । तीनों ने यही विचार किया कि इसको यहीं कोठरी में पड़ी रहने दो, दो-चार दिन तक न पानी दो, न भोजन दो । उन तीनों ने सक्खू को कोठरी में बंद करके दरवाजा बंद कर दिया । अँधेरी कोठरी में वह भूखी प्यासी पड़ी रही और धीरे-धीरे भगवान् का कीर्तन करने लगी, भगवान् का नाम उसने नहीं छोड़ा, वह श्रीराधारानी और कृष्ण का नाम ले रही थी । रात को सास-ससुर और पति तो आराम से सो रहे हैं मौज में यह सोचकर कि अच्छा दंड दिया, बड़ी भक्त बनी थी, खूब पिटाई हुई, अब भूखी प्यासी रहेगी तो समझ में आएगा कि **राधे-राधे** कहने से क्या होगा । पड़ोस में उसकी सहेली रहती थी । अच्छे आदमी को कोई न कोई अच्छा साथी मिल भी जाता है । वह सहेली सक्खू से बड़ा प्यार करती थी, जानती थी कि ये बेचारी बड़ी अच्छी है, भक्ति ही तो करती है लेकिन ये निशाचर लोग इसको बड़ा पीटते हैं । अब करे क्या बेचारी, वह भी पड़ोस की बहू थी, अब बहू-बहू को क्या मदद देगी लेकिन भगवान् श्यामसुन्दर ने इस सहेली का रूप बनाया और बना करके सक्खू की कोठरी के पास आये, उनके आते ही ताला अपने आप खुल गया क्योंकि भगवान् तो भगवान् हैं, जब कंस की जेल में वह थे तो सभी ताले खुल गए फिर ये तो छोटे-मोटे ताले थे । अँधेरे में भगवान् सक्खू की कोठरी में घुसे और उसको गोद में ले लिया । देखो, भगवान् कितना प्यार करता है यदि उसकी शरण सच्ची हो, प्यार सच्चा हो । हम जैसे लोग नकली हैं तो नकली प्रेम नहीं असली प्रेम चाहिए । भगवान् सक्खू की सहेली के रूप में गए थे । अपनी सहेली को बंद कोठरी के भीतर देखकर सक्खू ने पूछा – अरे ! तू यहाँ कैसे आ गयी ? सहेली बोली - मैं तो इसलिए आ गयी क्योंकि मुझे पता था कि तुझे बहुत पीटा गया है । सक्खू बोली कि बाहर से तो ताला बंद था । सहेली बोली - ताला तो मैंने खोल लिया । सक्खू ने पूछा - तू यहाँ क्यों आई ? सहेली ने कहा – ले, तू पहले पानी पी, ये भोजन कर, तेरे लिए लायी हूँ, चुपचाप खा ले । अब सहेली का रूप तो भगवान् ने बना लिया है, सक्खू को क्या पता कि ये प्रभु हैं, ठाकुरजी उसको खिला रहे हैं, उस भोजन को करते ही उसकी सारी शक्ति वापस आ गयी, सब दर्द गायब हो गया । ठाकुरजी ने सक्खू को पानी पिलाया । सक्खू रोने लग गयी और भगवान् रूपी सहेली से बोली कि तू जल्दी चली जा नहीं तो मेरे सास, ससुर और पति तुझको भी पीटेंगे । मेरे सास, ससुर और पति बड़े क्रूर हैं । वह सहेली बोली - देख, मैं अब यहाँ से लौट के नहीं जाऊँगी, मैं यहाँ तेरी जगह बँध जाती हूँ, तू मुझे बाँध दे और पंडरपुर चली जा । सक्खू ने कहा – अरे, ऐसा कैसे हो सकता है, सब सो रहे हैं । सहेली बोली - तू जा पंडरपुर, वहाँ भगवान् के दर्शन कर, मुझको भगवान् ने सपना दिया है, इसलिए मैं तेरी सहायता के लिए आई हूँ । जब उसने ऐसा कहा तो सक्खू बोली – अब मेरे ससुराल वाले तुझे पीटेंगे । सहेली बोली - अभी तो दो-चार दिन वे लोग किवाड़ नहीं खोलेंगे, जब तक तू आ जायेगी । सहेली ने यह भी कहा कि मुझे ऐसा करने के लिए भगवान् ने स्वप्न में आज्ञा दिया है । अब तो सक्खू को विश्वास हो गया । उसने सहेली रूपी भगवान् के हाथ-पाँव रस्सी से बाँध दिए ताकि ससुराल वाले देखेंगे कि कोठरी में, अँधेरे में सक्खू पड़ी है तो वे उसका पीछा नहीं करेंगे । सहेली को बाँध करके सक्खू

****

रात को घर से निकली और भागना शुरू किया, रात भर वह भागती रही और दूसरे दिन वहाँ पहुँच गयी जहाँ भक्त लोग कीर्तन कर रहे थे। उन भक्तों ने देखा - अरे, ये तो वही बहू है जिसको इसके पति और ससुर पकड़ के ले गए थे। कीर्तन वाले भक्त दयालु तो होते ही हैं, उन्होंने सक्खू से पूछा - तुम यहाँ कैसे आ गयी बहन ? उसने कहा कि मैं इस तरह आ गयी हूँ कि मुझको मेरी सहेली ने भेजा क्योंकि उसको प्रभु ने स्वप्न दिया था, मेरी जगह कोठरी में वह बँध गई है। उन भक्तों ने सक्खू से बहुत प्रेम किया और इनके साथ वह कीर्तन में प्रेम से नाचती-कूदती। वे कीर्तनियाँ भक्त उसे प्रेम से भोजन कराते, पानी पिलाते। भक्त तो भक्त से प्रेम करता ही है, इस प्रकार वे भक्त प्रेम से कीर्तन करते हुए पंडरपुर पहुँच गए। सक्खू ने वहाँ पण्डरीनाथ भगवान् के दर्शन किये, बड़ा आनंद आया। वह सोचने लग गयी कि मैं प्रतिदिन विचार करती थी कि आज पंडरपुर चलूँ लेकिन ऐसा लगता था कि अब जिन्दगी में कभी यहाँ आ नहीं पाऊँगी। उसको वहाँ बड़ा आनंद आया। उधर उसकी ससुराल में क्या हुआ कि दो-तीन दिन बीत गए तो सास बोली कि कहीं ऐसा न हो कि सक्खू मर जाए, कहीं मर जाएगी तो बड़ी बदनामी होगी क्योंकि हमलोगों ने उसे पीटा है, ये पड़ोसिन देख रही थी। इसलिए उसने अपने बेटे से कहा कि तू जा और उसके हाथ-पाँव खोल दे नहीं तो वह मर जाएगी। ससुर भी बोला - बात तो सही है, यदि वह मर गई तो हमारी बड़ी बदनामी होगी और गाँव वाले क्या कहेंगे ? उसने भी कहा - बेटा, जल्दी जाकर के सक्खू को खोल दे, दो-तीन दिन हो गए हैं, न उसने पानी पिया है, न रोटी खायी है। पति देवता कोठरी में घुसे रस्सी खोलने के लिए, उधर ठाकुर जी ने सक्खूबाई का रूप बना लिया, पहले तो सहेली बनके आए थे, अब उन्होंने सक्खूबाई का रूप बना लिया, वही मुँह, वही आँख-कान और जब पति ने रस्सी खोला तो उन्हें छूते ही उसकी बुद्धि शुद्ध हो गई। भगवान् की कृपा से चमत्कार हो गया। पति सोच रहा है कि हमने इस बेचारी को बहुत पीटा, ये बड़ा गलत काम हुआ, कई दिन से हमने इसको रोटी नहीं दिया, पानी नहीं दिया, ये तो बहुत गलत बात है। अब उसकी बुद्धि शुद्ध हो गयी, इसलिए ऐसा सोचने लगा। जब आदमी की बुद्धि शुद्ध हो जाती है तब उसको अपनी गलती का पता पड़ता है। पति सक्खू को कोठरी के बाहर लाया और उसने अपने माँ-बाप से कहा कि ये मरी नहीं, जीवित है। प्रभु ने अपनी लीला दिखायी, वे ही सक्खू बने हैं। सक्खू सास से लिपट कर रोने लग गयी तो सास की भी बुद्धि शुद्ध हो गयी, वह बोली - बेटी, तुझे बहुत कष्ट हुआ, अब खा-पी ले, फिर बहू ने ससुर के पाँव छुए तो ससुर की बुद्धि भी शुद्ध हो गयी, वह बोला - बेटी, ये बड़ा गड़बड़ हुआ, हम लोगों ने तुझे व्यर्थ ही मारा-पीटा, तू हमें माफ कर दे। सास भी कहने लगी - बेटी, तू हमें माफ़ कर दे, तू तो बड़ी अच्छी है, कोई दुःख नहीं करना मन में। सक्खू बोली - नहीं-नहीं माताजी, मुझे कोई दुःख नहीं है, आप लोग तो मेरे माता-पिता हैं, यदि मुझको मारेंगे तो मेरी भलाई के लिए ही मारेंगे। भगवान् ने ऐसी कृपा कर दी कि सास-ससुर कहने लगे – अरे ! कैसी अच्छी बहू है, देखो तो ये कह रही है कि आप मारेंगे तो भलाई के लिए मारेंगे, कैसी हीरा जैसी बहू है, अब तो सास-ससुर और पति सक्खू से बड़ा प्यार करने लगे। नकली सक्खूबाई ने भोजन बनाया और सास-ससुर व पति ने पाया। देखो, भगवान् की लीला, वह रसोई घर में बैठकर भोजन बना रहे हैं और ये सब खा रहे हैं। भक्त के लिए भगवान् क्या-क्या नहीं करते हैं। अब जब भगवान् के द्वारा बनाया हुआ भोजन किया सास-ससुर और पति ने तो उनकी बुद्धि और अधिक शुद्ध हो गयी। वे कहने लगे – अरे सक्खू, तू तो बड़ी अच्छी है, कीर्तन करती है, अब हम भी तेरे साथ कीर्तन किया करेंगे। अब तो तीनों कीर्तन कर रहे हैं और सक्खूबाई कीर्तन करा रही है। वह घर ही अब बदल गया और उधर पंडरपुर में असली सक्खूबाई रोज वहाँ से चलने की सोचती थी। पंद्रह दिन हो गए उसको और यहाँ तक कि भगवान् ने एक और लीला किया कि वह दर्शन करते-करते जब वहाँ से चलने लग गयी तो सोलहवें दिन उसने सोचा कि अब मैं जा रही हूँ फिर जीवन में कहाँ आऊँगी तो वहीं भगवान् के विरह में उसने शरीर छोड़ दिया। वहीं जब उसकी मृत्यु हो गई तो कहवाड़ गाँव का अचानक एक पंडित भी पंडरपुर पहुँच गया। लोगों ने कहा - अरे, यह कौन स्त्री मर गयी है, तो वह ब्राह्मण बोला कि ये तो हमारे गाँव की बहू है। लोगों ने पूछा - तुम इसे जानते हो। ब्राह्मण ने कहा - हाँ, मैं जानता हूँ। मैं इसके गाँव का पंडित हूँ, ये हमारे गाँव की बहू है, ये घर से भाग करके यहाँ दर्शन

करने आई थी। पुराने जमाने में मोटर-गाड़ी, ट्रैक्टर आदि तो थे नहीं, अतः सबने वहीं सक्खू का दाह संस्कार कर दिया और इस तरह से उसका अन्तिम संस्कार करके वह पंडित बोला - ठीक है, अब मैं जाऊँगा और उसके घर वालों से कह दूंगा कि तुम्हारी बहू वहां मर गयी है। सास-ससुर से कह दूंगा कि उसका मैंने संस्कार कर दिया। अब इधर रुक्मिणीजी ने देखा कि ठाकुरजी सक्खू के घर में बँधे पड़े हैं, अब जब तक सक्खू नहीं जायेगी तब तक ठाकुरजी बँधे रहेगें तो रुक्मिणीजी गयीं उसकी चिता पर और सब हड्डी इकट्ठा करके पानी छिड़का और सक्खू को जीवित कर दिया और बोलीं - अरी सक्खू ! तू जल्दी अपने घर जा। तेरे कारण प्रभु वहां नकली सक्खू बन करके बंद हैं और तू जितने दिन यहाँ रहेगी, भगवान् को कष्ट होगा, इसलिए तू जल्दी जा। रुक्मिणीजी का आदेश सुन करके सक्खू उठी और चलने लग गयी। उसके पहले वह पंडितजी पहुँच गए थे जिनके सामने वह मरी थी और उन्होंने उसका दाह संस्कार किया था। पंडित जी पहुँचे घर में और नकली सक्खू तो भीतर रसोई बना रही है। वह अन्दर पहुँचे और सक्खू की सास से बोले - अरे बुढ़िया, तेरी बहू मर गयी, बड़ी अच्छी थी, मैंने उसका दाह संस्कार कर दिया। बुढ़िया बोली - हमारी बहू मर गयी, अरे पंडितजी ! ये क्या कह रहे हो ? पंडितजी बोले - हाँ भाई, बेचारी पंडरपुर में दर्शन करने गई थी, वहाँ उसकी मृत्यु हो गयी, वहां पर हम लोगों ने उसका अन्तिम संस्कार किया, तब तक ससुर आये और बोले - अरे पण्डितजी ! तुम यह क्या कहते हो, हमारी बहू तो यहाँ रोटी बना रही है। इतने में सक्खू का पति आया और पंडितजी से बोला – अरे ! आप क्या कहते हो, मेरी पत्नी तो यहाँ रोटी बना रही है। पंडितजी ने कहा – निश्चित रूप से भाई, मैं पंडरपुर में उसका दाह संस्कार करके आया हूँ। सक्खू के सास-ससुर और पति बोले - हम कैसे मान लें, हमारी बहू तो यहाँ घर में है। तब तक असली सक्खूबाई वहीं पहुँची नदी के किनारे, जहाँ से वह घड़ा रख के गयी थी। अब वहाँ ठाकुर जी उसकी सहेली का रूप बनाकर आये और उससे कहा कि अब तू जल्दी चली जा घर, ले यह घड़ा पानी का। सक्खू ने अपनी सहेली से पूछा – अरे ! तेरी पिटाई नहीं हुई, तू कैसे छूट के आ गई। सहेली बोली - पिटाई कुछ नहीं हुई, अब तू चली जा, घर में सब आनंद है, मंगल है, तू चिंता मत कर। सक्खू ने पूछा - ऐसा कैसे हुआ ? सहेली बोली - ये सब भगवान् की लीला है, उन सबकी बुद्धि शुद्ध हो गयी। अब सक्खू को क्या पता कि ये सहेली नहीं है, ये तो भगवान् हैं। वह घड़ा भर करके घर पहुँची तो सास ने देखा कि यह तो घड़ा लेके आ रही है, उसने पूछा – अरी बहू, तू घड़ा लेके कैसे आ रही है, अभी तो रोटी बना रही थी। अब तो डर के कारण सक्खू काँपने लग गयी। वह बोली - माता जी ! मुझको आप क्षमा कर दो। सास बोली - अरे क्षमा क्यों, तू तो हमारी बड़ी लाड़ली है, ऐसा कहके वह सक्खू से प्यार करने लग गयी। सक्खू सोचने लग गयी कि ये क्या हो गया। मैं तो समझती थी कि घर पहुँचते ही मेरी डंडों से पिटाई होगी। तब तक पति आया और सक्खू से बोला – अरे, तू पानी भरने कैसे गयी, अभी तो तू रोटी बना रही थी। सक्खू बोली - मैं रोटी कहाँ बना रही थी, वे लोग उसे घर के भीतर ले गए। अब घर के भीतर जो सक्खू के रूप में भगवान् थे, वह गायब हो गए। रसोई घर में आटा, बेलन, लकड़ी आदि सब पदार्थ गायब हो गए। सक्खू बोली – माताजी ! मैं पंद्रह दिन से यहाँ नहीं थी। सास ने कहा – झूठ बोलती है, पंद्रह दिन से तूने ऐसा भोजन बनाया, भोजन में गजब का स्वाद आता था। तब तक वह पंडितजी आ गए और बोले - सक्खू, तू तो पंडरपुर में मर गयी थी। सक्खू बोली - हाँ, मैं मर गयी थी। सास-ससुर बोले - ये क्या चक्कर है, समझ में नहीं आ रहा है, फिर बोले तू मर गयी थी। सक्खू ने कहा – हाँ, मैं मर गयी थी, फिर मुझको रुक्मिणीजी ने जिन्दा किया। आश्चर्यचकित होकर सास ससुर बोले - अरे ! तो इतने दिन तक यहाँ तेरे रूप में कौन रहा ? सक्खू बोली - यहाँ तो भगवान् द्वारिकाधीश ठाकुरजी रहे, मुझको रुक्मिणीजी ने बताया था कि तेरा वेश बना करके वहां भगवान् सेवा कर रहे हैं, तू जल्दी घर जा तो मैं दौड़ के यहाँ आई हूँ। तब तक पंडित जी और भी उस गाँव के दो गवाह बुला के लाये और बोले कि इन लोगों से पूछो। वे बोले - हाँ, ये सक्खू पंडरपुर में मर गयी थी और इसका वहां दाह संस्कार हुआ था किन्तु ये जो सामने खड़ी है, यह कौन है, क्या भूत-प्रेत है। तब सक्खू ने बताया कि रुक्मिणीजी ने मुझको जिन्दा किया और इस प्रकार मैं यहाँ आई हूँ। सक्खू की भक्ति को देख-सुनकर वहाँ के लोगों में भी भक्ति आ गई। अतः सक्खू के जीवन-चरित्र से हमें शिक्षा मिलती है कि यदि सक्खूबाई जैसी भगवान् के प्रति लगन हो तो सब काम बन जाता है, सहज में विशुद्ध प्रेममयी भक्ति की प्राप्ति हो जाती है। क्रमशः

अमंगलहारी परमदेव 'गौमाता'

श्रीबाबा महाराज के सत्संग 'गौ-महिमा' (१५/०७/२०१२) से संग्रहीत
संकलनकर्त्री / लेखिका – साध्वी माधुरीजी मानमंदिर, बरसाना

गाय सर्वदेवमयी है । जितने भी देव हैं, ये गाय के श्रीअंगों में निवास करते हैं । ऐसा कोई भी देवता नहीं है, जो गाय के शरीर में रहने को तरसता न हो । गाय को विश्वरूप कहा गया है ।

एक बार देवताओं में, ऋषि-मुनियों में विवाद हो गया कि हममें से कौन बड़ा है । संसार में सारा झगड़ा इसी बात का है । साधु-संतों, महंतों, मण्डलेश्वरों, विद्वानों में, सब जगह प्रायः यह देखा जाता है कि वे अपने को बड़ा मानने लगते हैं और बड़ा मानने के कारण फिर विवाद होता है, झगड़ा होता है । केनोपनिषद में कथा आती है कि एकबार देवासुर-संग्राम में देवता विजयी हो गए तो उनको अभिमान हो गया कि हम बड़े हैं, तब वहाँ पर भगवान् यक्ष का रूप बनाकर गए और देवताओं के बड़प्पन का अभिमान चूर्ण कर दिया । बड़प्पन की बीमारी ऐसी है जो प्राणीमात्र को लगी हुई है,इस बीमारी से जो बच गया, वही बड़ा है । विष्णुजी इस बीमारी से बच गए तो त्रिदेवों में उनको बड़ा माना गया । एकबार जब देवी-देवता, ऋषि-मुनि इकट्ठे हुए तो वे सब अपने को बड़ा मानते थे । निर्णय नहीं हो पाया कि उनमें बड़ा कौन है ? इस निर्णय के लिए वे सभी वेद भगवान् के न्यायालय में गये । वेद भगवान् ने पूछा – "आप लोग कैसे आये हो ?" सभी देवी-देवताओं ने कहा कि हममें बड़ा कौन है ? इसका आपसे न्याय सुनने हम सब आये हैं । वेद भगवान् बोले – "तुम लोग अपना-अपना पक्ष सामने रखो ।"सब अपनी-अपनी प्रशंसा करने लग गए और कहने लगे कि मेरे कारण समाज उठा । अग्निदेव बोले –"मेरे कारण यज्ञ होते हैं । मेरा नाम हव्यवाट है, हव्य अर्थात् यज्ञ का पदार्थ, उसको ढोने वाला, देवताओं तक पहुँचाने वाला मैं ही हूँ । इसलिए मैं हव्यवाट हूँ । यदि मैं यज्ञीय पदार्थ देवताओं को न पहुँचाऊँ तो सब भूखे रहेंगे ।

मैं ही देवताओं को भोजन पहुँचाता हूँ । इसके बाद ऋषि-मुनियों ने कहा कि हमलोग समाज को धारण करते हैं । सबकी बात सुनने के बाद अथर्ववेद (जो भगवान् का रूप है) ने निर्णय दिया – "संसार में सबसे बड़ा एक ही देव है और वह है - गाय । चाहे उसे गाय कहो या ऋषि कहो या धाम या भगवान् का तेज कहो या आशीर्वाद कहो अथवा ऋतु कहो, पूजनीय देव कहो, समाज का उत्थान करने वाला कहो, वह एक ही है ।" अथर्ववेद में यह प्रश्न किया गया है कि कौन ऋषि है, कौन गौ है, कौन धाम है ? इसका उत्तर दिया गया कि परमेश्वर भगवान् ही एकमात्र ऋषि हैं, दृष्टा हैं । वही एकमात्र धाम हैं । 'धाम' का अर्थ है- स्थान । भगवान् ने गीता में भी कहा है कि मैं ही धाम हूँ ।

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ।।

(गीता ९/१८)

मैं ही गति हूँ । 'गति' अर्थात सब प्राणियों का गन्तव्य स्थान । जब तक मनुष्य भगवान् की प्राप्ति नहीं कर लेता तब तक वह चौरासी लाख योनियों के चक्कर लगाता हुआ घूमता रहता है । भगवान् जो सबकी गति है, उनको प्राप्त करने के बाद, एकमात्र भगवान् के पास जाने के बाद मनुष्य लौटता नहीं है । इसलिए गति एकमात्र भगवान् हैं।भगवान् बोले कि मुझको प्राप्त होने के बाद फिर जीव नहीं लौटता । 'भर्ता' अर्थात् मैं ही सारे संसार का भरण-पोषण करने वाला हूँ । प्रभु- सबका स्वामी, साक्षी अर्थात् सबका दृष्टा, निवास-रहने का स्थान, शरण, सुहृद, प्रभव-उत्पत्ति स्थान, प्रलय अर्थात् लीन होने का स्थान । 'स्थान' अर्थात् सृष्टि रुकने के बाद टिकने का स्थान, निधान अर्थात् समाप्त होना, अविनाशी बीज आदि सब मैं हूँ । अथर्ववेद ने कहा कि एक ही ऋषि है, सबकी एक ही गति है और वह है गौ । अथर्ववेद में ऐसे बहुत से मंत्र आते हैं जिसमें यह निर्णय किया गया कि गाय ही सबसे बड़ी देवता है । गाय ही सबकी गति है । इसका सबसे बड़ा प्रमाण है कि ऋग्वेद में वर्णन आता है कि एकबार इन्द्र ने सभा के बीच में घोषणा किया कि हे वीरो ! हमारे कर्म गौ को प्रधान

स्थान देकर नियुक्त कीजिये और हमें कल्याणमय स्थिति में कीजिये। ऋग्वेद में देवताओं ने गौ-स्तुति की है कि हमारी बुद्धि में गौमाता के प्रति आस्था बढ़े। संसार में जितने भी जीव हैं चाहे वे देवता हैं, चाहे कोई भी है, किसी का भी मल-मूत्र पवित्र नहीं माना गया, एक गाय ही ऐसी है जिसका मल-मूत्र पवित्र माना गया और गाय के गोबर से ही गौरी-गणेश की पूजा होती है। गोवर्धन भगवान् का स्वरूप गोबर से ही बनता है। गाय के गोबर से भगवान् की मूर्ति बनती है और समस्त देवताओं की पूजा होती है। सृष्टि में ऐसा अन्य कोई प्राणी नहीं है जिसका मल-मूत्र इतना पूजा जाए। इसीलिए वेदों ने निर्णय किया कि एक ही सर्वपूज्य सबसे बड़ा देव है - गौ।

महाभारत में कथा आती है कि च्यवन ऋषि ने राजा नहुष से कहा था कि गाय से बड़ा धन कुछ नहीं है। गायों का नाम, उनका कीर्तन, उनके गुणों का वर्णन, उनका श्रवण, उनका दर्शन करना – ये जो कोई भी मनुष्य करता है तो उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं। गौमाता में इतनी शक्ति है कि वह समस्त पापों का हरण कर लेती है। तीस वर्ष तक यदि कपिला गौ का दूध पिया जाए तो बिना कुछ किये सब पाप जल जाते हैं। गाय ही लक्ष्मी है, लक्ष्मी का मूल है। गायों में पाप नहीं है। यहाँ तक कि गाय मनुष्यों को सर्वदा अन्न, देवताओं को हविष्य, उनका भोजन देती हैं। गाय ही यज्ञ का मुख है। ये अमृत धारण करती हैं और दुहने पर अमृत देती हैं। समुद्र मंथन में पहले कामधेनु गाय निकली, उसके बाद अमृत निकला। ऐसा इसीलिए हुआ कि पहले गाय, पीछे अमृत। समुद्र मंथन में चौदह रत्न निकले थे और उनमें सबसे अधिक पूज्य गाय है।

राजा नहुष के राज्य में एक बार मछुआरों ने मछली पकड़ने के लिए नदी में जाल डाला। च्यवन ऋषि जल के भीतर गहराई में समाधि लगाकर भजन कर रहे थे। ऋषियों में बड़ी शक्ति होती है। जब मछुआरों ने जाल डाला तो मछलियाँ पकड़ में आयीं, मछलियों के साथ च्यवन ऋषि भी जाल में आ गये। जब मछुआरों ने जाल को बाहर निकाला तो उसमें च्यवन ऋषि को देखकर वे बहुत डर गए क्योंकि च्यवन ऋषि बहुत क्रोधी हैं। ये माँ के गर्भ से ही क्रोध लेकर निकले। मछुवारों को भयभीत देखकर च्यवन ऋषि ने कहा, "डरो मत, तुम्हारा कोई दोष नहीं है। ये मछलियाँ मेरी बहन हैं, इन्हें छोड़ दो"। मछुवारों ने इन्हें दंडवत किया और कहा कि महाराज ! आप जाओ, तो च्यवन ऋषि ने कहा – "पहले इन मछलियों को छोड़ो तब मैं जाऊँगा।" उस समय नहुषजी का राज्य था, वे उधर से ही निकल रहे थे। उन्होंने नदी तट पर भीड़ देखी तो पूछा कि यहाँ भीड़ क्यों है ? लोगों ने बताया कि मछुवारों के जाल में च्यवन ऋषि भी आ गए हैं और ये कहते हैं कि सब मछलियों को छोड़ दो। मछुआरे कहते हैं कि मछली हमारी जीविका है, इन्हें कैसे छोड़ें, यही विवाद हो रहा है। राजा ने मछुवारों से कहा कि ऋषि जो कहते हैं वही करो, मछलियों को छोड़ दो। च्यवन ऋषि ने राजा नहुष से कहा कि मुझको तुम छुड़वा रहे हो तो मेरा मूल्य इन मछुवारों को दे दो। राजा नहुष मूल्य देने के लिए तैयार हो गए, उसी समय वहाँ बहुत से ऋषि एकत्रित हो गए। राजा नहुष ने च्यवन ऋषि का मूल्य लगाया – एक हजार स्वर्ण मुद्रा। च्यवन ऋषि बोले कि यह मेरा मूल्य नहीं है। फिर नहुष ने दो हजार स्वर्ण मुद्रा लगाया लेकिन ऋषि बोले कि ये भी मेरा मूल्य नहीं है, फिर राजा नहुष ने और अधिक मूल्य लगाया, अंत में एक लाख स्वर्ण मुद्रा मूल्य लगाया किन्तु च्यवनजी बोले – "नहीं, यह भी मेरा मूल्य नहीं है।" तब ऋषियों ने नहुष से कहा कि च्यवन ऋषि की तपस्या का कोई मूल्य नहीं है। विवाद बढ़ता गया, नहुष बोले - "मैं आधा राज्य देता हूँ।" ऋषि बोले - "नहीं ! एक ऋषि का मूल्य राज्य नहीं हो सकता, सारी पृथ्वी भी नहीं हो सकती"। ऋषि के तप के आगे सूर्य-चन्द्र भी कुछ नहीं है।" नहुष ने पूछा - "फिर इनका मूल्य क्या होगा, क्या ये जाल में ही पड़े रहेंगे क्योंकि बिना मूल्य दिए ये जायेंगे नहीं।" इतने में एक ब्राह्मण आया, उसने पूछा कि क्या समस्या है ? नहुष ने कहा कि च्यवन ऋषि का मूल्य देने वाला पृथ्वी पर कोई भी नहीं है। ब्राह्मण बोला - "हटो ! इनका मूल्य मैं दूँगा"। ऐसा कहकर वह ब्राह्मण एक गाय को लाया और बोला, "यह गाय लो और पूछो इनसे कि इनका मूल्य हो गया कि नहीं ?" च्यवन बोले, "मुझसे ज्यादा मूल्य हो गया। राजन ! तेज में अग्नि से बढ़कर गाय है, अग्नि तो केवल जला देती है किन्तु गौवंश का अपमान सारे वंश को जला देता है। जहाँ गायें निर्भय रहती हैं। 'निर्भय' माने उन्हें कोई चिंता नहीं रहती, न खाने की, न पीने की; वे गायें केवल मनुष्य के पाप ही

नहीं अपितु सम्पूर्ण देश के पाप को जला देती हैं।" जिस दिन गौ हत्या बंद होगी, उस दिन सतयुग आ जाएगा। जब तक गौवंश का सम्मान नहीं होगा तब तक कलियुग बढ़ता रहेगा। इसका प्रमाण श्रीमद्भागवत में हैं। जिस समय परीक्षितजी ने दिग्विजय किया, वे दिशाओं को जीतने के लिए चले तो उन्होंने देखा कि एक शूद्र राजा एक बैल को मार रहा है। परीक्षित बोले, "अरे! अर्जुन के वंश में उत्पन्न होने वाले राजाओं के सामने गौ वंश पर अत्याचार करने वाला तू कौन है?" परीक्षित महान तेजस्वी थे। जो गौवंश पर अत्याचार कर रहा था, वह कलियुग था।

कुछ विद्वानों ने श्री बाबा महाराज से प्रश्न किया कि गौवंश पर अत्याचार बंद क्यों नहीं होता? तब बाबा महाराज ने कहा कि यह युग की महिमा है। जिस दिन गौवंश पर अत्याचार घट जाएगा, कलियुग नष्ट हो जाएगा। कलियुग जानता है कि गौवंश देश के पाप को खींच देता है।

'सर्वात्मसमर्पण' से ही श्रीकृष्णप्रेम सम्भव

श्रीबाबामहाराज के सत्संग
'गोपीगीत' (२७/७/१९९७) से संग्रहीत
संकलनकर्त्री / लेखिका – साध्वी सुगीताजी
मानमंदिर ,बरसाना

प्रेम में बिकना सीखना है। हमलोग बिक जाएँ, इसी का नाम प्रेम है। अभी तो हमको स्त्री ने खरीदा है, पुत्रों ने खरीदा है, विषयों ने खरीदा है, धन-संपत्ति ने खरीदा है। हमारा रोम-रोम माया में बिक चुका है। भगवान् ने कहा कि तुम बिकना सीखो। अपना मन मुझे बेच दो, अपनी बुद्धि मुझे बेच दो, ऐसा करने से तुम मेरे पास आ जाओगे। प्रेम में कैसे बिका जाता है, यह सीख लो। सच्ची बात है कि बिक जाओ तो कृष्ण को खरीद लोगे; यह स्वयं भगवान् ने कहा है –

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः॥

(गीता १२/८)

अपना मन मुझे बेच दे, अपनी बुद्धि मुझमें रख दे अर्थात् बेच दे। **'मय्येव'** का अर्थ है केवल मुझमें ही, मुझमें ही का मतलब और कहीं नहीं। साधु लोग बढ़िया भोजन, बढ़िया पंगत की याद करते हैं, गृहस्थ लोग अपने स्त्री–पुत्र और धन-संपत्ति की याद करते रहते हैं। ये सब जितनी भी चीजें हैं, इन्हें हटाओ। इन सबको याद करने से क्या होगा? इन चीजों की याद करने से हम लोग कमजोर हो जाते हैं। किसी का बच्चा बीमार है, वह उसकी याद कर रहा है, इससे क्या लाभ होगा, क्या बच्चा ठीक हो जायेगा? अरे, कृष्ण को हृदय में धारण करो, तुम्हारे हृदय में कृष्ण आयेंगे तो तुम्हारी इच्छा शक्ति से ही सब मंगलमय हो जायेगा। जहाँ भगवान् आते हैं, वहाँ सब कुछ मंगलमय हो जाता है लेकिन हम लोग हृदय में भगवान् को धारण नहीं करते हैं। भगवान् ने गीता में कहा कि मन को मुझमें लगाओ अर्थात् अब मन में कोई दूसरी चीज की याद नहीं आए। इस मन के अन्दर चित्त आ जाता है और बुद्धि के भीतर अहंकार आ जाता है इसलिए यहाँ अंतःकरण चतुष्टय को संक्षेप में भगवान् ने दो में रख दिया। मुझमें मन लगाओ अर्थात् मेरा स्मरण करो। यह सोच लो कि अब हम दुनिया में किसी अन्य का स्मरण नहीं करेंगे चाहे प्यारी से प्यारी पत्नी है, चाहे अच्छे से अच्छा पुत्र है या सुन्दर से सुन्दर कामदेव जैसा पति है क्योंकि उसके स्मरण से कल्याण नहीं होगा, यह तो बिल्कुल धोखा है। भागवत में रुक्मिणीजी ने कहा है कि संसार में पति 'स्त्री' की याद करता है और स्त्री 'पति' की याद करती है। जो स्त्री 'पति' के शरीर की याद करती है कि हमारे पति के ऐसे गाल हैं, तोते की तरह नाक है, उसकी आँख कमल की तरह है, लम्बी भुजाएं हैं, चौड़ी छाती है, इस तरह से जो याद करती है वह मुर्दे को याद करती है। रुक्मिणीजी श्रीकृष्ण से कहती हैं कि वह स्त्री मुर्दा शरीर की याद करती है जिसने आपके चरणकमलों के मकरंद को नहीं सूँघा है। पुरुष भी स्त्री की याद करता है जैसे ब्रज में एक लोक गीत है – **'अरी बहना, रड़ुआ तो रोवे आधी रात सपने में देख कामिनी।'** अब वह रड़ुआ क्यों रो रहा है? वह स्त्री रूपी मुर्दा शरीर को याद कर रहा है। हम लोग जो एक-दूसरे के शरीर की याद करते हैं, यह मुर्दा शरीर को याद करना है। यह रोने की बात है कि हम मनुष्य हो करके भी उस

मुर्दा शरीर की याद करते हैं जिसमें केवल मल-मूत्र भरा हुआ है । रुक्मिणीजी ने यहाँ तक कहा है –

त्वक्श्मश्रुरोमनखकेशपिनद्धमन्त-
मांसास्थिरक्तकृमिविट्कफपित्तवातम् ।
जीवच्छवं भजति कान्तमतिर्विमूढा
या ते पदाब्जमकरन्दमजिघ्रती स्त्री ॥

(भागवत १०/६०/४५)

स्त्री-पुरुष एक दूसरे के शरीर की याद करते हैं जबकि शरीर के ऊपर गंदी खाल है । इसको हमलोग बढ़िया साबुन से स्नान कराते हैं । वस्तुतः है तो यह खाल ही, जैसे बकरे की खाल वैसे हमारी खाल, पुरुष शरीर में दाढ़ी-मूछ होती है, रोम हैं, नाख़ून हैं। ये किस शरीर में नहीं है, सुन्दर से सुन्दर लड़के में भी ये विकार होते हैं । ये मनुष्य शरीर की पोल है । शरीर में बाल होते हैं, चाहे शीशा देखकर बाल झाड़ते रहो लेकिन है ये खराब चीज । शरीर के भीतर क्या है – मांस, अस्थि(हड्डी), रक्त (खून), और कृमि (कीड़े) हैं । हमारे शरीर के भीतर अरबों कीड़े हैं । एक सुई की नोक पर दस हजार जीवाणु रहते हैं । जितने दुनिया में मनुष्य नहीं हैं उतने जीवाणु हमारे शरीर में रहते हैं । इसके अतिरिक्त सबके शरीर में मल-मूत्र है । चाहे राजा हो, चाहे रानी हो, शौच करने जायेंगे तो क्या निकलेगा, गुलाब का फूल तो निकलेगा नहीं । ये तो आँखों का धोखा है, जो लोग कहते हैं कि बड़ी सुन्दर लड़की है । ऊपर के मटका को क्या देखता है, मटके के भीतर देख उसमें से क्या निकलेगा । इसको हमेशा याद रखो जो हमलोग सुन्दर शरीर देखकर मोहित हो जाते हैं तो हम किस कुआं में जा रहे हैं, मल-मूत्र के कुएं में गिरने जा रहे हैं । यह याद नहीं रहता है, मनुष्य मूर्ख बन जाता है । ऐसा अन्धा है कि शरीर की गंदगी को देखकर भी अँधा बना रहता है । इसको याद रखो और मल-मूत्र के पिंड को छोड़ो । इस मुर्दा शरीर की याद मत करो । भगवान् ने गीता में कहा – **'मय्येव मन आधत्स्व'** मन से सदा मेरा स्मरण करो, मन मुझे बेच दो तथा **'मयि बुद्धिं निवेशय'** बुद्धि से समझो कि एकमात्र सत्य श्रीकृष्ण तत्त्व है लेकिन हम लोग बड़े धोखेबाज हैं, जब कोई मरता है तो झूठ-मूठ कहते हैं रामनाम सत्य है किन्तु मुर्दा फूंककर घर वापस आते हैं तो कहते हैं स्त्री सत्य है, पुत्र सत्य है, धन सत्य है, मकान सत्य है, शरीर सत्य है और वहां झूठे ही चिल्ला आये रामनाम सत्य है, सत्य बोलो गत्य है और वास्तव में कहेंगे कि असत्य में ही फँसे रहो । यह सब धोखे का व्यापार है । अतः बुद्धि से यही सोचो कि केवल श्रीकृष्ण ही सत्य तत्त्व हैं।

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं ।
सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये ।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं
सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥

(भागवत १०/२/२६)

एकमात्र श्रीकृष्ण ही सत्य हैं और बाकी सब झूठ है । हमारा शरीर झूठ है, स्त्री झूठ है, पति झूठ है, पुत्र झूठ है, नोटों का बण्डल झूठ है, सोना-चांदी झूठ है, तुम्हारी हवेली झूठी है, जमीन-जायदाद झूठी है । इसे याद रखो, ये भूल जाते हैं तभी तिजोरी में धन को बंद करके रखते हैं, हमलोग साधु होकर भी पैसा इकट्ठा करते हैं क्योंकि नोट के बण्डल को सत्य मान रखा है । यदि बुद्धि भगवान् में लग गई अर्थात् निश्चय हो गया कि सत्य कुछ नहीं है, सब असत्य है, मिट्टी का क्या संग्रह करना तो उधर मन ही नहीं जाएगा, याद ही नहीं आएगी । भगवान् बोले – "मुझमें मन लगा, मुझमें बुद्धि लगा और फिर देख जब तू बिक जाएगा तो मेरे भीतर निवास करेगा, मेरी गोद में रहेगा ।" ऐसे भक्त को भगवान् कन्धे पर उठाकर ले जाते हैं ।

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥

(गीता १२/७)

मैं अपने भक्त को उठाकर भवसागर के पार ले जाता हूँ, जैसे - माता अपने बच्चे को गोद में ले जाती है । यदि तुम बिक गए तो मैं तुम्हारा नौकर बन जाऊँगा ।

परन्तु मुश्किल ये है कि हम लोग बिकते नहीं हैं, बिकते कहाँ है, कूड़ेखाने में जाकर बिकते हैं । रुपया-पैसा, जमीन-जायदाद, स्त्री, पुत्र जो एक दिन हमें छोड़ कर चले जायेंगे; न स्त्री अपनी, न पुत्र अपना । इतने विस्तार से यह व्याख्या इसलिए की गयी कि ब्रजगोपियों का श्रीकृष्ण पर इतना अधिकार क्यों है ? इतना अधिकार इसलिए है क्योंकि वे कृष्ण के लिए बिक चुकी थीं । यदि कोई सोचे कि वे स्त्री थीं तो स्त्री की बात नहीं हैं। भगवान् ने अगणित भक्तों की गुलामी की है । भक्तमाल में सैकड़ो भक्तों की कथाएं हैं । भगवान् त्रिलोचन भक्त के यहाँ बिके, दास बनकर उनके यहाँ सेवा की, अर्जुन का रथ हाँका, अर्जुन के

****

सारथी (नौकर) बने। भक्त माधवदासजी को संग्रहणी हुई तो भगवान् ने उनके मल को धोया, जैसे - माँ अपने बच्चे का मल धोती है। इस प्रकार भगवान् ने असंख्य भक्तों की सेवा की। केवल स्त्री-पुरुष की ही बात नहीं है, भगवान् ने जटायु का अपने पिता से अधिक सम्मान किया क्योंकि इन्होंने भगवान् के लिए अपने शरीर को अर्पित कर दिया, सीताजी की रक्षा के लिए रावण से लड़े और रावण ने उनके पंख काट दिए, यह बिकना है; इस प्रकार उन्होंने भगवान् के लिए अपने पंख कटवा दिए, वे भगवान् की याद में तड़पते रहे, भगवान् आये अपनी गोद में लेकर उन्हें प्यार किया और पिता की तरह उनका दाह संस्कार किया जबकि अपने पिता दशरथ का दाह संस्कार नहीं कर पाए थे; बिकने का यह फल होता है। हम भी बिक सकते हैं यदि हमारी हर क्रिया भगवान् के लिए समर्पित हो जाए। खाना खाओ तो भगवान् के लिए खाओ, इसलिए खा रहे हैं कि शरीर से भगवान् का भजन करेंगें तो तुम्हारा भोजन करना भी भक्ति हो जाएगा। किसी से बात इस उद्देश्य से करो कि भगवान् की चर्चा करेंगे तो तुम्हारा बात करना भी भजन हो जाएगा। हर क्रिया भगवान् के लिए होनी चाहिए, यहाँ तक कि सोना है तो भगवान् के लिए सोओ, ऐसा नहीं कि बहुत से लोग कहते हैं कि हमें नीद नहीं आई तो हम बहुत देर तक जागते रहे। ऐसे लोग बड़े मूर्ख हैं क्योंकि उन्होंने दिमाग में कीड़ा घुसा लिया है कि नींद न आना बुरी बात है। भक्त को तो कभी नींद आती ही नहीं है। तुलसीदास जी ने लिखा है – **डासत ही गई बीत निसा,**

कबहुँ न नाथ नींद भरि सोयो।

हे राम ! बिस्तर बिछाने में ही सारी रात बीत गई, मैं कभी नींद भरकर नहीं सोया। भक्त कभी सोता नहीं है, वह भगवान् के विरह में तड़पता है। अगर नींद ने गिरा दिया तो सो जाओ। अनादिकाल से हमलोग सो रहे हैं। जागना सीखो, नींद नहीं आई तो दुःख मत करो, जागो।**कबिरा सोना दूर कर, जागो जपो मुरार।** जागो सब लोग और रात भर प्रभु को बुलाया करो। वह घर कितना बढ़िया होगा जहाँ स्त्री भी रात को गोपाल-गोपाल कह रही है, पति भी नींद खुलते ही गोपाल का नाम ले रहा है, बेटा भी श्रीराधे-गोपाल कह रहा है, उस घर में स्वयं ही भगवान् आ जायेंगे।

एक दिना है सोवना लम्बे पाँव पसार॥

एक दिन तो सोना ही है, उसी दिन सोयेंगे बाकी सोना व्यर्थ है। भक्त तो भजन करता है, नींद ने पटक दिया तो सो गया, वह नींद भी भजन बन गयी, इस प्रकार हर क्रिया भजन बन जाती है। तब वह प्रभु को खरीद लेता है। गीता में नवें अध्याय में भगवान् ने बताया है कि कैसे बिका जाता है ? बिक जाओ प्यारे ! इस जिन्दगी का वास्तविक आनन्द प्राप्त कर लो।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

(गीता ९/२७)

इस श्लोक का अर्थ समझो और समझकर करने लग जाओ क्योंकि जिंदगी बीत रही है। जैसे - कोई श्रीजी के मंदिर जाने का केवल रास्ता ही पूछ रहा है कि किधर से मार्ग है, अरे ! पूछते क्या हो ? पूछते–पूछते मर जाओगे, तुरन्त चलना शुरू कर दो। भगवान् कहते हैं – '**यत्करोषि**' जो कुछ भी करते हो। 'यत्' का अर्थ है - जो, अर्थात् सभी क्रियाएं; जैसे - खाना- पीना। भोजन करो तो भगवान् का नाम लेकर करो, घर में स्त्री से भी बात करो तो उससे भगवान् और भक्तों की या संत-महात्माओं की चर्चा करो; इस तरह तुम्हारा बात करना भी भजन हो जाएगा। सोते हो तो सोने से पहले भजन करते रहो, जब तक नींद नहीं आती तब तक भगवान् का नाम लेते रहो तो सोना भी भजन हो जाएगा। पानी पीते हो तो गोपाल जी के लिए पानी पियो। जब भक्ति में और अधिक प्रगति हो जायेगी तो किसी से बात करोगे तो बात करते समय मन में ऐसा प्रतीत होगा कि कृष्ण से बात कर रहे हैं। इतनी अधिक तुम्हारी भगवत्स्मृति बढ़ जायेगी कि भूल जाओगे कि ये स्त्री है, यह पुरुष है, यह गोरा है, ये काला है, ये लाल रंग का कुर्ता है, ये पीले रंग का कुर्ता है, ये सब भूल जाओगे। ये तो ऐसा भगवत्प्रेम का नशा है कि भक्त लोग जब किसी से बात करते हैं तो उन्हें स्मरण रहता है कि हम कृष्ण से बात कर रहे हैं, तब काम, क्रोध, लोभ आदि विकार भाग जाते हैं। **यत्करोषि -** जो कुछ करते हो, **यदश्नासि -** जो कुछ खाते हो, **यज्जुहोषि -** जो हवन करते हो, **ददासि-**किसी को जो कुछ भी देते हो तो यह समझो कि यह कृष्ण है, **यत्तपस्यसि-** जो कुछ तपस्या करते हो, वह मेरे (भगवान् को) अर्पण कर दो, बस इस तरह से तुम बिक जाओगे।

गोपीगीत के श्लोक (भा.१०/३१/१६) में '**कितव**' शब्द की व्याख्या में सनातन गोस्वामी जी ने 'धूर्तता' और 'अकृतज्ञता' का गोपियों की ओर से श्रीकृष्ण पर आरोप लगाया। ऐसी गाली कृष्ण को गोपियाँ प्रेमातिरेक भाव में दे रही हैं ? श्यामसुन्दर में प्रेमाधिक्य के कारण ही गोपियाँ कटु वचन बोलती हैं। एक तो गाली का लक्ष्य ये होता है कि किसी को अपने घर से भगाना है तो उसका अपमान कर दो, वह गाली द्वेष से दी जाती है। एक गाली प्रेम से दी जाती है जो रस पैदा करती है, उससे खिंचकर प्रेमी बार-बार आता है। विवाह आदि में गाली की प्रथा सारे भारत वर्ष में है।

भोजनु करहिं सुर अति विलम्बु
विनोदु सुनि सचु पावहीं।

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड-९९)

देवता भी उस गाली को तरसते हैं। देवगण शिवजी की बरात में गये तो भोजन करते समय वहाँ की नारियों के मुख से गाली सुनकर भोजन का एक-एक कौर बहुत धीरे से उठाते हैं ताकि दस-पाँच गालियाँ और मिल जाएँ। ये गाली प्रेम की है। अतः गाली-गाली में अन्तर होता है। गोपियों का कितना बड़ा अधिकार है, एक स्थान पर वे कहती हैं –

सुनहु सखी हरि करत अनीती।
आप स्वार्थी हैं मनमोहन पीर नहीं औरन की जानी।

श्रीकृष्ण कपटी हैं, स्वार्थी हैं। एक गोपी अपनी सखी से बोली- मैं तो पहले ही कहती थी कि इस निष्ठुर से प्रेम मत कर, पीछे पछताएगी।

"वे तो निठुर सदा मैं जानति बात कहत मनही की।"

किसी दिन कान्हा मिलेगा तो बहुत क्रोध करूँगी, गाली दूँगी। कहूँगी तू बड़ा चोर है, बड़ा कपटी है, तू बड़ा छलिया है, बेपीर है, बेदर्दी है।

"कैसे उनहि वहाँ करि पाऊँ रिस मेटौं सब जी की।"

प्रेम में क्रोध भी आता है, उस क्रोध में भी बड़ा आनंद आता है। जब गोपियों को क्रोध आता है, जब क्रोध में भरकर वे श्रीकृष्ण से कुछ कहती हैं तो श्रीकृष्ण आनन्द में भर जाते हैं। जब रास से अंतर्धान होने के बाद वह पुनः गोपियों से मिले तो गोपियों को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने श्रीकृष्ण के चरणों और हाथों को गोद में ले लिया, मुस्कुरा रही हैं लेकिन साथ ही बहुत क्रोध भी आ रहा है। अनेकानेक भाव एक साथ आते हैं। श्रीराधिकारानी में जब महाभाव आता है तो अनेकों भाव एक साथ उत्पन्न होते हैं। अब गोपियों के हृदय में अनेकों भावों का उदय हो रहा है - एक गोपी ने कृष्ण के चरणों को अपने हाथों में लिया, एक ने कृष्ण के हाथों को अपनी गोद में लिया। वे मुस्कुरा रहीं हैं, भौंह मरोड़ रही हैं लेकिन साथ ही क्रोध भी बहुत आ रहा है, ये विविध भाव हैं। गोपियाँ क्रोध में आ गईं, इस क्रोध का सूरदास आदि महापुरुषों ने वर्णन किया है। गोपियाँ कहती हैं कि श्यामसुन्दर तुम बड़े निष्ठुर हो।

निठुर तुम प्रेम न जानहु श्याम।

तुम बड़े बेपीर हो, प्रेम नहीं जानते हो। एक जगह सूरदास जी लिखते हैं कि ललिता जी बोलीं –

सूरदास उठ ललिता बोलीं आखिर जाति अहीर।
चले गए दिल के दामनगीर।

गोपियाँ कहती हैं कि कृष्ण यदि मिले तो बहुत क्रोध करूँगी और उनके गालों में गुलचा लगाऊँगी।

हमें देखता भी नहीं है, ऐसा निष्ठुर है –

चितवत नाहि मोहि सपनेहु को जानै उनही की।
ऐसे मिलै सूर के प्रभु को मनहु मोल दै बीकी॥

वह निष्ठुर ऐसा नचाता है जैसे हमें खरीद लिया हो, चाहे जब आता है, चाहे जब चला जाता है। कृष्ण ने गोपियों को कब खरीदा ? जब वे स्वयं बिक गईं तब खरीदा। प्रेम में सौदा कब होता है ? जब कोई पहले स्वयं बिकता है तब खरीदने वाला खरीदता है। प्रेम में परस्पर इस तरह से मोल लिया जाता है, उसका दाम यही है। तुम कृष्ण को खरीदना चाहते हो तो पहले अपना सब कुछ उनके लिए बेच दो, जब तुम बिक जाओगे तो कृष्ण को खरीद लोगे। ऐसे ही कृष्ण भी हैं, वह भी पहले भक्तों के हाथ में बिक जाते हैं तब भक्त को खरीदते हैं। भागवत में एक जगह शुकदेवजी ने कहा है कि कृष्ण बिक गए, ऐसे बिके कि कठपुतली की तरह गोपियाँ जिधर नचाती थीं उधर नाचते थे।

गोपीभिः स्तोभितोऽनृत्यद् भगवान् बालवत् क्वचित्।
उद्गायति क्वचिन्मुग्धस्तद्वशो दारुयन्त्रवत्॥

(भागवत १०/११/७)

गोपियाँ कृष्ण को कठपुतली की तरह नचाती थीं और वह नाचते थे।जिसको प्रेम का सौदा करना है तो पहले बिकना (विशुद्ध प्रेम 'समर्थ प्रेम' करना) सीखो। जब हमलोग बिक (सर्वात्मभाव से समर्पति हो) जायेंगे तब कृष्ण को खरीद सकेगें। क्रमशः

धामाराधकों की निष्ठा

श्रीबाबामहाराज के सत्संग 'धाम-महिमा'
(५/५/२००६) से संग्रहीत
संकलनकर्त्री / लेखिका – साध्वी पद्माक्षीजी
मानमंदिर ,बरसाना

कृष्ण-प्रेमिकाएँ ब्रजगोपियों ने प्रेम में बाधक सभी प्रकार के द्वंद्व धर्मों को समूलतः नष्ट करके आजीवन ब्रजभूमि में रहकर ब्रजोपासना की।

द्वन्द्व से निर्मुक्त भजन के बारे में गीता में भगवान् ने कहा है –

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः॥

(गीता ७/२८)

जन्म-मरण, आधि-व्याधि, सुख-दुःख, राग-द्वेष आदि ये सब द्वन्द्व हैं, इनकी चिंता मनुष्य को दृढ़व्रत भजन से हटा देती है। इसीलिए भगवान् ने कहा कि जब तक इन द्वन्द्वों का मोह रहता है तब तक दृढ़व्रत का भजन नहीं होता है। हम जैसे लोग लुढ़का करते हैं, कभी इधर लुढ़के, कभी उधर लुढ़के। लुढ़कन्त-लुढ़कन्त होता रहता है। जबकि भक्तमाल में जिन शुद्ध भक्तों का चरित्र गाया गया है, जैसे - मीराबाई, रानी रत्नावती आदि, वे क्या रहे होंगे, हम लोग उसका अनुमान ही नहीं लगा सकते, जिन्होंने 'मौत से खेल' खेल डाला, जिन्होंने मृत्यु को वरण किया। रानी रत्नावती शेर के चरणों से लिपट गयी। वह क्या रही होगी, इसकी कल्पना भी हम जैसे लोग नहीं कर सकते। उन भक्तों के चित्त में किसी प्रकार का द्वन्द्व नहीं था – न जन्म का, न मरण का, न हानि का, न लाभ का, न सुख का, न दुःख का, न मान का, न अपमान का, न निंदा का, न स्तुति का; ये सब द्वन्द्व हैं, ये जब तक हमारे चित्त में घर बनाये बैठे रहते हैं तब तक हम जैसे लोग भजन का पाखण्ड (दंभ) किया करते हैं, भजन नहीं करते। द्वन्द्वों से घिरकर भजन नहीं होता है। निष्ठा या किसी भी स्थिति पर पहुँचने के लिए जैसा कि भगवान् ने कहा – **'ते द्वंदमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढवृता :॥'** द्वन्द्वरूप मोह से मुक्त भक्तजन दृढ़व्रत के साथ मेरा भजन करते हैं। हमारे पाप ही तो द्वन्द्व बनकर आते हैं। '**येषां त्वंतगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।**' घाव पर मक्खी बैठती है। कोई कहता है अमुक व्यक्ति उसके कुसंग से गिर गया, कोई कहता है कि अमुक व्यक्ति ने उसे बहका दिया; ये सब गलत है। कोई न किसी को बहकाता है, न कोई किसी को कुसंग देता है। जीव अपने ही राग-द्वेष आदि द्वंदों के कारण लुढ़कता रहता है। जब तक चित्त में द्वन्द्व रहता है, यही स्थिति रहती है। जो काम, क्रोध आदि द्वन्द्व हैं, वे तो बुरे हैं ही, दिखाई भी पड़ते हैं लेकिन जो अच्छाई के द्वन्द्व हैं जैसा कि अर्जुन के साथ हुआ – लोक-परलोक की चिंता, दया, धर्म आदि का विचार; ये द्वन्द्व बड़े सूक्ष्म होते हैं, ये दिखाई नहीं पड़ते हैं, इनके कारण आदमी जरूर गिर जाता है, इसको धार्मिक द्वन्द्व कहा जाता है। धर्म भी अनेक प्रकार के होते हैं। रामायण में वर्णन है -

'जप जोग धर्म समूह ते'

(श्रीरामचरितमानस, अरण्यकाण्ड – ६)

धर्मों के समूह हैं - वर्णाश्रम धर्म, स्मार्त धर्म, श्रौतधर्म, वैदिक धर्म, लौकिक धर्म आदि। इसलिए भगवान् ने कहा कि ये धर्म भी द्वन्द्व पैदा करते हैं अतः

'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥'

(गीता १८/६६)

धर्मों को ही छोड़ दे क्योंकि ये द्वन्द्व पैदा करते हैं। अतः एकमात्र मेरी शरण में आ जा और सब झगड़ा ख़तम। धर्मरूपी द्वन्द्व को छोड़ने से जो पाप होगा उस पाप से मैं ही छुडाऊँगा। रत्नावती की तरह वीर बन जाओगे तो एक प्राकृत शेर भी नृसिंह भगवान् बन जाएगा। भूखा प्राकृत हिंसक शेर भी नृसिंह भगवान् बनकर के रानी रत्नावती के सिर पर अपने पंजों की थाप रखकर आशीर्वाद देता है। आशीर्वाद लेकर रत्नावती ने लड्डू-पेड़े का थाल सिंह के आगे कर दिया और बोली – 'हे नृसिंह! भोग पाओ।' अब प्राकृत शेर तो लड्डू-पेड़ा नहीं खाता है। ऐसा कभी नहीं हुआ लेकिन उस शेर ने रानी द्वारा अर्पित भोग को ग्रहण किया, हाथ से रानी ने शेर के मुख में लड्डू-पेड़ा डाला और वह सब खा गया। पानी पिलाया वह भी पिया। शेर तो जीभ से चाटकर पानी पीता है परन्तु उस शेर में नृसिंह भगवान् का

आवेश था अतः उसने अपने स्वभाव के विपरीत सब काम किया। शेर आग से डरता है लेकिन रानी ने आरती उतारी तो भी वह डरा नहीं। आरती करके जब रत्नावती पीछे हटी तो वह शेर पुनः अपने हिंसक भाव में आ गया, उसकी आँखे लाल हो गयी और गर्जना करने लगा। तिमंजिले पर राजा माधवसिंह और उनके सलाहकार दुष्ट मंत्री बैठे थे, शेर केवल बारह फीट उछलता है लेकिन वह १२ फीट उछलने वाला सिंह नहीं रह गया था। जब वह गर्जना करने लगा तो दुष्ट मंत्रियों ने सोचा कि अब वह रानी रत्नावती को खा जायेगा लेकिन उसने पीछे हटकर उछाल मारी और तिमंजिले पर जा पहुंचा। वहां जो दुष्ट मंत्री और भक्त द्रोही बैठे थे जिन्होंने राजा को सलाह देकर रानी रत्नावती को सिंह द्वारा मार डालने की योजना बनाई थी, उन दुष्ट मंत्रियों को वह सिंह एक-एक थाप में जान से मारकर वहां से चला गया। राजा साहब की आँख खुल गयी। वे दौड़कर रानी के पास आये और उनके चरणों में गिर पड़े। रानी उस समय अपने प्रभु को साष्टांग प्रणाम कर रही थी। रानी की दासी गुरु ने कहा – "राजा साहब आपको साष्टांग दंडवत कर रहे हैं। आप इनकी ओर देखती क्यों नहीं है ?"

दासी ही रानी रत्नावती की गुरु थी, उसी से रानी ने कृष्णभक्ति सीखी थी लेकिन दासी गुरु के कहने पर रानी ने कहा – "गुरु साहब ! अब ये आँखे उधर कभी नहीं देखेंगी।" रानी ने गुरु की बात काट दिया। रानी ने कहा कि अब मेरी आँखें तो एक ही तरफ केवल कृष्ण को ही देखती हैं। रानी की बात सुनकर राजा साहब चले गये।

एक बार अकबर की आज्ञा से माधवसिंह अपने बड़े भाई मानसिंह के साथ काबुल का युद्ध करके लौट रहे थे तो मार्ग में अटक नदी मिली, वह अत्यंत भयानक नदी थी। दोनों भाई नाव से नदी पार कर रहे थे। इतने में तूफ़ान आया और नाव डूबने लगी। मानसिंह ने माधवसिंह से कहा कि अब तो हम नहीं बच सकते क्योंकि यह पहाड़ी नदी है, इसमें अगम जल है और पत्थर की शिलाएं हैं। माधवसिंह बोले कि भाई साहब ! मेरा ऐसा विश्वास है कि मेरी पत्नी रत्नावती बहुत बड़ी भक्त है, वह अब भी हमें बचा सकती है। मैंने जब से सिंह वाला चमत्कार देखा है तब से मुझे चारों ओर अपनी स्त्री देवी के रूप में दिखाई पड़ती है। ऐसा लगता है कि वह हमें बचा सकती है। दोनों ने खड़े होकर जोर से पुकारा – "हे रत्नावती देवी ! हम तुम्हारी शरण में हैं।" इतना कहते ही जो नाव भंवर में फँस रही थी, वह तीव्र वेग के साथ पार हो गयी; भक्त की ऐसी दिव्य शक्ति होती है।

इसीलिए धामवास करते समय जिस निष्ठा की आवश्यकता होती है, द्वंद्वों के रहते वह निष्ठा नहीं मिल सकती, चाहे आप कितना भी प्रयत्न कर लें, चाहे साधु-संत बन जाएँ, चाहे कुछ भी बन जाएँ। इसके लिए तो जैसा भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से गीता में कहा कि जब तक तेरे हृदय में द्वन्द्व हैं तब तक तू दृढ़व्रत वाला निष्ठावान नहीं हो सकता। इसीलिए धाम के प्रति निष्ठा के लिए द्वन्द्वों से छूटना आवश्यक है।

क्रमशः

> **"मन साधन से कभी थके नहीं, लगे रहो चौबीस घंटे, तब तुम्हारा पाप नष्ट होगा और अन्तःकरण स्वच्छ होगा।"**

मोहन-मोहिनी से मोहित मनमोहन

(श्रीबाबा महाराज के सत्संग 'श्रीराधासुधानिधि' २/५/१९९८ से संग्रहीत)
संकलनकर्त्री / लेखिका – साध्वी ब्रजबाला जी
मानमंदिर ,बरसाना

यमुना का किनारा है। श्री किशोरी जी मुस्कुरा गयीं। उन्हें जल भरते देखकर श्रीकृष्ण विह्वल हो गए कि अब तो ये चली जायेंगी। श्रीजी मुस्कुराकर और सखी के सिर पर कलशा रखकर चल पड़ीं।

गोकुल की पनिहारी पनिया भरण चलीं,
बड़े-बड़े नैनन में खुद रहयो कजरा।
पहरे कंसूभी सारी अंग अंग छबि भारी,
गोरी–गोरी बैयन में मोतिन के गजरा।
सखी संग लिए लिए जात हँस हँस बतरात,
तन की सुधि भूल गयी सीस धर गगरा।
नन्ददास बलिहारि बीच मिले गिरधारी,
नैनन की सैन में भूल गयी दगरा।।

ये वही छटा है। समस्त ब्रजांगनाओं के सिर पर सोने के कलश हैं, उन कलशों में यमुना जल भरा है, चरणों

की पायल की झनकार की सुन्दर ध्वनि दूर तक जा रही है। श्रीकृष्ण देख रहे हैं कि ये तो चल पड़ीं।

घरहीं चली यमुना जल भरके

आगे सखियाँ हैं, पीछे सखियाँ हैं, बीच में इन सबकी महारानी नागरी श्रीकिशोरीजू विराज रही हैं, जैसे कोई राजा सेना के बीच में चलता है, बड़ी सुन्दर छटा है। **सखियन बीच नागरि राजति**

श्रीकृष्ण के हृदय में प्रेम जाग गया।

भई प्रीति उर हरि के

श्रीजी मन्द-मन्द गति से जा रही हैं। शीघ्रता तो है नहीं। ये प्रेम का रस है। यमुना छलक रही है तो प्रेम भी सबके हृदय में छलक रहा है। वायु भी यमुना जल का स्पर्श करके ऐसे बह रही है जैसे वायु नहीं है, इसमें भी यमुना भी छलक रही है, सखियाँ भी छलक रही हैं, श्यामसुन्दर भी छलक रहे हैं, सबके हृदय में प्रेम उमड़ करके छलक रहा है। इसीलिए राधारानी धीरे-धीरे जा रही हैं, प्रेम के बोझ से दबी जा रही हैं।

मन्द-मन्द गति चलती अधिक छबि

हवा आई और राधारानी की चुनरी या फ़रिया को उड़ाकर ले चली और उस चुनरी की हवा, चुनरी की सुगन्ध को लेकर के दौड़ती हुई वृन्दावन की वायु श्रीकृष्ण की सेवा कर रही है, श्रीकृष्ण के पास पहुँचती है, उनकी नासिका के भीतर प्रवेश कर जाती है और गौरांगी की सुगन्ध को पाकर वे खड़े रह जाते हैं, प्रफुल्लित होकर कहते हैं – वाह ! राधारानी की सुगन्ध आ रही है। **अंचल रह्यो फहरके फहरके**

वायु में तीन गुण होते हैं – 'शीतल, मन्द, सुगन्ध' इसको कहते हैं 'त्रिविध पवन'। वायु में ये तीन गुण होने चाहिए। प्रेम विलास के लिए तीन गुण होते हैं। वह वायु तीन रूप से बह रही है, क्यों ? यमुना जी की तरंग को चूमती हुई चली थी। यमुना के दिव्य जल के कण थे, उस वायु में प्रातःकाल की वह अत्यन्त शीतल वायु थी और जहाँ कुछ शीतलता होती है, वहाँ गति धीमी हो जाती है। ग्रीष्म ऋतु की उष्ण वायु में शीतलता नहीं होती है तो अत्यन्त वेग से उड़ा करती है किन्तु उसमें जब कुछ जल का बोझ आता है तो वायु की गति मन्द हो जाती है। इसी तरह वृन्दावन की वायु की गति मन्द है तथा सुगन्ध के लिए वह फूलों के पास क्यों जाए यद्यपि यमुनाजी में असंख्य कमल पुष्प प्रस्फुटित हुए हैं। वायु जब तीन प्रकार का गुण धारण करती है तो पुष्पों के पास जाती है, उनका पराग लेकर प्रवाहित होती है, उसको कहते हैं शीतल, मन्द, सुगन्ध, वायु। यमुना जी की लहर का चुम्बन करती हुई हवा चलती है और श्रीराधिकारानी का अंग स्पर्श करके दिव्य सुगन्ध से भर जाती है, इस तरह से शीतल-मंद-सुगन्ध त्रिविध बयार हो गयी और वह श्रीकृष्ण के पास पहुँची। श्रीकृष्ण तो उसे पाकर मोहित हो गए, इसीलिए राधासुधानिधिकार ने कहा –

यस्याः कदापि वसनांचल खेलनोत्थ
धन्यातिधन्य पवनेन कृतार्थमानी।

इस पंक्ति के कई भाव हैं। एक भाव तो यह है कि मोहन की मोहनी श्रीजी को भी लग गयी। दूसरा भाव ये है कि श्रीकृष्ण के हृदय में प्रेम का आवेग उमड़ रहा है इसलिए सखियाँ श्रीजी से कहती हैं –लाड़िली जी ! आपके अंग की दिव्य सुगन्ध को प्राप्त करके श्यामसुन्दर की कैसी दशा हो गयी है ? एक सखी कहती है - अरे श्याम सुन्दर ! होश में आ जाओ, कैसे लड़खड़ा रहे हो। श्यामसुन्दर कहते हैं – ये मेरा दोष नहीं है, यह तुम्हारी महारानी राधारानी का दोष है। उनकी सुगन्ध के प्रभाव से मुझे मोहनी लग गयी है। श्रीकृष्ण का नाम है मोहन तो श्रीजी का नाम है मोहनमोहिनी। सखी 'श्रीजी' से कहती है – राधे ! ये दोष तो आपका है। श्रीजी ने पूछा- क्यों ? सखी बोली - आपके दिव्य अंग की सुगन्ध ऐसी है कि श्यामसुन्दर को मोहिनी लग गयी है। श्रीजी कहतीं हैं – अरे ! वह मोहन मुझ पर मोहिनी लगाने का दोषारोपण करते हैं। यह उचित नहीं है। मैंने तो कुछ नहीं किया।

मोहन मोको मोहिनी लगाई

सखी 'श्रीजी' से बोली - आपने मोहन को मोहिनी लगा दी है। श्रीजी ने पूछा - क्यों ? सखी बोली – वह आपके पीछे-पीछे लट्टू की तरह चले आ रहे हैं। आपकी चूनरी की वायु ऐसी है कि

संग ही चले डगर के डगर के

सुन्दर कुंज गली है, बीच में सखियाँ हैं और उनके मध्य में राधारानी हैं तथा श्यामसुन्दर डगर के किनारे-किनारे चल रहे हैं, ये मनमोहक छटा है। किनारे-किनारे श्रीराधिकारानी के मुख का दर्शन करते हुए चल रहे हैं लट्टू होते हुए और रुक नहीं रहे हैं, जहाँ श्रीजी रुकती हैं वहाँ रुकते हैं, जहाँ चल देती हैं वहाँ स्वयं भी चल देते हैं। खड़ी हो गईं तो खड़े हो गए, चल पड़ीं तो चल पड़े, श्रीजी किसी सखी से बात करने लगीं तो श्यामसुन्दर खड़े होकर उनको देखने लगे। सखी ने श्रीजी से कहा – लाड़िली जी ! जरा-सा बायीं ओर मुड़के देखो। किशोरीजी देख नहीं रही हैं,

जानती हैं, क्या देखें, वही होंगे। जान-बूझकर नहीं देख रही हैं, यह उनकी अदा है। नायिका की अदा को संस्कृत में 'विभ्रम' कहते हैं। राधाकृपाकटाक्ष स्तोत्र में भी वर्णन आता है –

अनङ्ग रङ्ग मङ्गल प्रसङ्ग भङ्गुर भ्रुवां।
सविभ्रमं ससम्भ्रमं दृगन्त बाणपातनैः ।।

सविभ्रमम् – ये अदा है। राधारानी की हर चीज में अदा है, जैसे - रूपगर्वीली, गुण गर्वीली। इसीलिए राधिकारानी सखी के आग्रह करने पर भी श्यामसुन्दर की ओर नहीं देख रही हैं। सखी कहती है – आप देखो न, इधर कौन चल रहा है। राधारानी जान-बूझकर अनजान बन जाती हैं और कहती हैं - दूर देखो, कितनी सुन्दर गति से हिरन उड़ रहा है। सखी कहती हैं – अरे, हिरन तो उड़ रहा है, एक वृन्दावन के दूसरे नये हिरन को देखो, वह नील हिरन है। श्रीजी कहती हैं नहीं वो बड़ा सुन्दर हिरन है। ऐसा कहकर श्रीकृष्ण को नहीं देखती हैं। श्यामसुन्दर की ओर उनकी पीठ है, दूर देखती हैं और कहती हैं, वो देखो दूर कैसी सुन्दर छटा है, वहाँ यमुना कैसी उमड़ रही है। श्यामसुन्दर श्रीजी का पृष्ठ भाग देख रहे हैं। वह देखते हैं मणि जटित लम्बी वेणी गौरांगी के पृष्ठ भाग पर झूल रही है। जो मीठा है उसका सब कुछ मीठा है, चाहे आगे है, चाहे पीछे है, चाहे अगल है, चाहे बगल है; श्रीजी तो सर्वांगसुन्दरी हैं, कहीं से भी उनका दर्शन करो। श्यामसुन्दर देखते हैं –

बेनी की छबि कहत न आवै

महानीलमणि की सुन्दर माला श्रीजी की वेणी में लटक रही है और उस वेणी के भीतर बेला के श्वेत पुष्प इस प्रकार लगाए गए हैं मानो काली रात में सफ़ेद तारे चमचमा रहे हैं। ऐसी सुन्दर चोटी है। राधारानी जान-बूझकर श्रीकृष्ण की ओर पीठ फेरकर यमुनाजी की छटा देख रही हैं और श्रीकृष्ण उनकी वेणी देख रहे हैं। श्रीजी की वेणी भी बार-बार इधर से उधर हिल रही है।

रह्यो नितम्बिन धरके धरके

जैसे-जैसे श्रीजी अपनी अदा दिखाती हैं तो श्यामसुन्दर की ओर पीठ कर लेती हैं कि मैं उन्हें नहीं देखूँगी वैसे-वैसे श्रीकृष्ण और अधिक उनके वश में हो रहे हैं। श्रीकृष्ण का रोम-रोम वश में हो गया है, न हिल रहे हैं, न डुल रहे हैं।

सूर श्याम प्यारी के वश भये

क्यों ? श्रीकृष्ण के रोम-रोम में राधारानी का रस व्याप्त हो गया। **रोम-रोम रस भरके-भरके**

इसीलिए कहा गया है – **यस्याः कदापि वसनांचल खेलनोत्थ धन्यातिधन्य पवनेन कृतार्थमानी।** क्रमशः

श्रद्धा चैनल पर परम पूज्य श्री रमेश बाबा महाराजजी के सत्संग का सायं ३:४० से ४ बजे तक प्रतिदिन प्रसारण

श्रद्धा चैनल पर व्यासाचार्या साध्वी मुरलिकाजी की भागवत कथा का सायं ३ से ३:४० बजे तक प्रतिदिन प्रसारण

DHAAM-NISHTHAA

(Ravi Mongaji , new-delhi)

Yathashtu Vrishbhanu Mandiram Prabha shahashra mal Chandra

Every single rock of Barsana has more radiance than billions and billions of Moons put together. This is the real *darshan*(appearance) of Barsana. This is the real Barsana that we are incapable of seeing. This description is sung during *samaj* (traditional social song sung in the temples of braj) . It is not only in Sanskrit but also Hindi in which Rasiks have sung about it. There is so much to be said about Dham's glories that if even one were to talk about it for months , it shall not end. However, let me present a couplet from a *samaj gayan* that describe Barsana.

Ati saras basayo Barsano joo

This is Hindi. This talks about the real Barsana and not what we, the ones who are not inclined towards Dham see : dirty sewage flowing, excreta lying around etc. Barsana is laden with pure nectar.

Rajat Ramnik Rawano joo

Everything here is *chinmaya*(divine) & *Rasmay*(oozing with nectar).

Jahan Manimay Mandir Sohe joo

All buildings are made of divine and invaluable rubies, emeralds etc.

Upma ko ravishashi ko hai joo

The sparkles and radiance of these divine stones are far greater than those from the Sun and Moon.
Such is the description of real Barsana. *Prabha Sahashra mal Chandra nirmalam*. All this is mentioned in Vrishbhanu pur Shatak. Every rock, every pebble is billions of times more beautiful than the moon.
However, all that is mentioned is not visible to us. How can they be visible unless we have Kishori Ji's lotus feet in our heart? Although, we sing a lot about the Dham and its glories, the fact remains that we do not have the Lotus feet of Shri Radha Rani in our hearts. There is no "*Yad Radha Pad Kinkari Krit Hridaam*" in us. Hence, no "samyek Bhavet" and we cannot see the Dham.
Let us talk about the second level of Dham realization. It can be realized by meditating on it. However, we even while meditating about it earnestly are not able to visualize it. Instead, we while concentrating on dham, realize various other objects like *ladoos, pedas, jalebees,* rasmalaais and other weird things. One visiualizes what a 500 rupee note looks like or some other *bhoga* object. Hence, one cannot realize Barsana or Vrindavan even while meditating on it. Then how is one to achieve such a state where one can have *darshan* of Dham by meditating about it? The answer is;
Dheyam Naïve kadaapi Yatra divnaa tasyaa kripa sparshtah
Only, when Shri Radha Rani blesses completely. Now, does this mean that one can pass the blame onto kripa? No, because *kripa* rains perpetually. It pours 24 hours. Now if it were to rain uninterruptedly for a month and one chooses to keep his glass upside down then how can he collect even one drop of water. One can get water only when one keeps his glass right side up. This alone is the problem. Although we live in Dham, our hearts are not inclined towards the lotus feet of Shri Radha Rani, her holy names or ras(nectar). Our hearts are more interested in where the prasadam feast is going to be held today or where we can get donations and other such things. There are several other distractions. I remember that when my Guru Maharaaj, Baba came across one of my diaries, he inquired what it was about. I told him that it was a record of addresses of places and people where I had held my lectures earlier. He shot back "Am I panda(priest of a temple)? They are the ones who keep records of people who visit them. Is this why I had come to Braj"? I immediately tore up that diary and since that day I no longer keep addresses of anybody. He taught me that there is no benefit of living in Dham if I am concerned with the world outside. He said that it was not right for me to maintain contact details of people like pandas do. It is truly the job of Pandas as I remember that I once had visited Daooji and found that the pandas there had all records of my ancestors- my father, grandfather, great grand fathers – the entire family tree. I was perplexed and thought to myself that these pandas in a way are acting like gods.

to be continued……

True devotee is one who smiles while witnessing opposition . -pujya shri baba maharaj